प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

चिंतन की स्वतंत्रता

मेरे प्रिय आत्मन्! एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात कहूंगा।

एक बहुत पुराना गांव था। और उस गांव से भी ज्यादा पुराना एक चर्च था उस गांव में। उस चर्च की सारी दीवालें गिरने के करीब हो गई थीं। न तो कोई उपासक उस चर्च के भीतर प्रार्थना करने जाता था, न कोई कभी उस चर्च के भीतर... चर्च के भीतर जाना तो दूर, उसके पास से निकलने में भी लोग डरते थे। वह चर्च कभी भी गिर सकता था। हवाएं चलती थीं, तो गांव के लोग सोचते थे, आज चर्च गिर जाएगा। आकाश में बादल गरजते थे, तो गांव के लोग बाहर निकल कर देखते थे, चर्च गिर तो नहीं गया! बिजली चमकती थी, तो डर होता था, चर्च गिर जाएगा। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाता? चर्च बिल्कुल मरा हुआ था, लेकिन फिर भी खड़ा हुआ था।

कुछ मरी हुई चीजें भी खड़ी रह जाती हैं। और जब मरी हुई चीजें खड़ी रह जाती हैं, तो अत्यंत खतरनाक हो जाती हैं। मरे का मर जाना ही जरूरी है। मरे का खड़ा रहना बहुत खतरनाक है।

अगर हम सारे मुर्दों को खड़ा कर लें और कब्रों में न गड़ाएं और मरघटों में न जलाएं, तो दुनिया में जीने वाले लोगों की जो कठिनाई होगी, उसकी कल्पना करनी मुश्किल है। अगर सारे मुर्दे जो इस जमीन पर कभी रहे हैं और मर गए, अगर जगह-जगह खड़े कर दिए जाएं, तो जिंदा आदमी उनको देख कर ही पागल हो जाएंगे। उनको गड़ा देना और जला देना जरूरी है।

मरे का मर जाना ही जरूरी है; लेकिन वह चर्च मर गया था और खड़ा था। फिर चर्च के संरक्षक, कमेटी मिली, ट्रस्टी मिले और उन्होंने कहा, हम क्या करें कि लोग चर्च में आ सकें? क्योंकि ट्रस्टियों का हित इसी में था कि उस मरे चर्च में भी लोग आते ही रहें। उस चर्च से ही उनकी आजीविका चलती थी। चर्च का पादरी घर-घर जाकर समझाता था कि चर्च की तरफ आओ। हालांकि चर्च का पादरी भी चर्च से दूर-दूर ही रहता था, क्योंकि वह कभी भी गिर सकता था। अंततः चर्च की कमेटी मिली। कमेटी भी चर्च के भीतर नहीं मिली, वह भी चर्च से दूर उन्होंने बैठक की; और उन्होंने चार प्रस्ताव स्वीकार किए।

उन्होंने पहला प्रस्ताव स्वीकार किया कि हम बहुत दुख से यह स्वीकार करते हैं कि पुराने चर्च को गिरा दिया जाना चाहिए। और तत्काल दूसरा प्रस्ताव स्वीकार करते हैं कि पुराने चर्च की जगह हम एक नया चर्च बनाएं। और उन्होंने तीसरा प्रस्ताव यह भी किया कि पुराने चर्च की ईंटें ही नये चर्च में लगाएंगे। पुराने चर्च के द्वार-दरवाजे ही नये चर्च में लगाएंगे। पुराने चर्च की नींव पर ही नये चर्च को उठाएंगे। पुराना चर्च जैसा ही नया चर्च होगा। यह भी उन्होंने सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

तीन प्रस्ताव पास किए। एक, कि पुराने चर्च को गिरा देना है। दो, कि एक नया चर्च बनाना है। और तीसरा, कि पुराने चर्च की बुनियाद पर ही नये चर्च की नींव रखनी है। पुराने चर्च की ईंटों का ही नये चर्च में उपयोग करना है। पुराने द्वार-दरवाजे ही लगाने हैं। नये चर्च में कोई नई चीज नहीं लगानी है, सब पुराना लगाना है।

यहां तक भी गनीमत थी। उन्होंने चौथा एक प्रस्ताव और स्वीकार किया, कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराने को गिराना नहीं है।

वह चर्च अब भी खड़ा होगा और नया चर्च कभी नहीं बनेगा।

इस देश की हालत भी ऐसी ही है। इस देश का मंदिर बहुत पुराना हो गया है। वह इतना पुराना हो गया है कि उसका पीछे का पूरा इतिहास खोजना भी बहुत मुश्किल है। उसकी सब दीवालें सड़ गई हैं। उसकी सब बुनियादें खराब हो गई हैं। उसका सब कुछ अतीत में नष्ट-भ्रष्ट, जरा-जीर्ण हो गया है। और हम उसमें ही रहे चले जा रहे हैं! और इस देश के विचारशील लोग समझाते हैं कि हमारा बड़ा सौभाग्य है, क्योंकि हमारे पास सबसे ज्यादा पुराना समाज है।

यह दुर्भाग्य है, सौभाग्य नहीं। समाज नया होना चाहिए निरंतर। और जो समाज नये होने की क्षमता खो देता है, उस समाज से रौनक भी चली जाती है, खुशी भी चली जाती है, आनंद भी चला जाता है--जीवन का सब रस चला जाता है।

हिंदुस्तान की पूरी सामाजिक व्यवस्था, सारा ढांचा इतना पुराना हो गया है कि अब उसके भीतर न तो जीना संभव है, न मरना संभव है। उसके भीतर सिर्फ दुखी होना, पीड़ित होना और परेशान होना संभव है। और इसीलिए हम इतने आदी हो गए हैं दुख के कि दुख को मिटाने की कोई कल्पना भी हम में पैदा नहीं होती। न तो कोई देश इतनी गरीबी झेल सकता है जितनी हम झेलते हैं; न कोई देश इतनी बीमारी झेल सकता है जितनी हम झेलते हैं; न कोई देश इतनी बेईमानी झेल सकता है जितनी हम झेलते हैं। और झेलने का कुल एक कारण है कि हम इतने हजारों वर्षों से यह सब झेल रहे हैं कि हम धीरे-धीरे उसके आदी हो गए हैं। और हमें यह ख्याल ही नहीं आता कि इसमें कुछ गलत हो रहा है। यही होता रहा है, यही जीवन है--यह हमारी धारणा हो गई है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक मछुआ मछलियां बेचने आया था। वह मछलियां बेच कर जब लौटने लगा, तो सोचा कि राजधानी है, देख लूं घूम कर। वह गांव की बड़ी-बड़ी सड़कों पर गया। वह उस सड़क पर भी गया जहां सुगंधियों की दुकानें थीं, परफ्यूम्स की दुकानें थीं। लेकिन मछुआ एक ही सुगंध जानता था, मछली की, और कोई सुगंध नहीं जानता था। उसे जब वहां सुगंधियों की दुकानों से सुगंधियां उड़ती हुई हवा में आने लगीं, तो उसने सोचा, इस गांव के लोग बड़े पागल हैं! ये दुर्गंध की दुकानें किसलिए खोल रखी हैं? उसने अपना रूमाल अपनी नाक पर लगा लिया।

लेकिन जैसे-जैसे भीतर घुसा, और बड़ी दुकानें थीं। वह भागने लगा। और भागा तो और भीतर और बड़ी दुकानें थीं, वह दुनिया का सबसे बड़ा सुगंधियों का बाजार था, सुगंध के कारण वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

सुना है कभी, कोई सुगंध के कारण बेहोश होकर गिर पड़े? लेकिन वह एक सुगंध जानता था--मछली की। और बाकी सब दुर्गंध थीं। वह बेहोश होकर गिर पड़ा, तो बड़ी सुगंधियों के दुकानदार अपनी तिजोरियां खोल कर वे बहुमूल्य सुगंधियां उसे सुंघाने लाए जिनसे आदमी होश में आ जाता है। लेकिन वे उसे सुगंध सुंघाने लगे, वह बेहोशी में हाथ-पैर तड़फड़ाने लगा, हाथ-पैर पटकने लगा। भीड़ इकट्ठी हो गई। सुगंधि के दुकानदार बड़े हैरान हुए कि इन सुगंधियों से तो कोई भी बेहोश आदमी होश में आ जाए, यह हो क्या रहा है! उन्हें क्या पता कि जिसे वे सुगंध समझते हैं, उसे वह बेहोश आदमी दुर्गंध समझता है! क्योंकि वह बेहोश आदमी दुर्गंध को सुगंध समझने का आदी हो चुका है।

इस भीड़ में एक दूसरे मछुए ने यह हालत देखी, उसने कहा, ठहरो! तुम जान ले लोगे। सेवको, तुम रुक जाओ।

सेवक अक्सर जान लेने वाले सिद्ध होते हैं! अगर उन्हें पता न हो कि बीमारी क्या है, तो सेवक जान लेने वाले सिद्ध होते हैं। और इस देश में तो हम जानते हैं अच्छी तरह से कि सेवक किस तरह से जान ले रहे हैं। देश की बीमारी का उन्हें कोई पता नहीं है।

उस मछुए ने कहा, दूर हटो! वह मर जाएगा आदमी। जहां तक मैं समझता हूं, तुम ही उसको बेहोश करने के कारण हो। उसने सुगंधियों को दूर फिंकवा दिया। और उस गिरे हुए मछुए की टोकरी पड़ी थी, गंदा कपड़ा पड़ा था, हाथ से गिर गया था, जिसमें वह मछलियां लाया था, उस दूसरे मछुए ने उस पर पानी छिड़का और वह गंदी टोकरी उसके मुंह पर रख दी। उस बेहोश मछुए ने गहरी श्वास ली और कहा, दिस इ.ज रियल परफ्यूम! यह है असली सुगंध! ये दुष्ट मेरी जान लिए लेते थे। ये कहां-कहां की दुर्गंधें इकट्ठी किए हुए हैं!

अगर कोई आदमी दुर्गंध में रहा हो, तो दुर्गंध का आदी हो जाता है।

यह देश बीमारी का आदी हो गया है, गरीबी का आदी हो गया है, बेईमानी का आदी हो गया है, सब चीजों का आदी हो गया है। और यह आदत इतनी पुरानी हो गई है कि इसे हम खून में लेकर पैदा होते हैं। सड़क पर चलते वक्त अगर कोई भीख मांगता हमें दिखाई पड़ता है, तो हमें कोई बेचैनी नहीं होती। ज्यादा से ज्यादा यह होता है कि दो पैसे दे दो। लेकिन यह कोई बेचैनी नहीं है। यह सिर्फ बेचैनी से बचने की तरकीब है। यह दो पैसे देकर जैसे हम झंझट से छुटकारा पा गए! लेकिन गांव में कोई भीख मांगता है, यह पूरे गांव का अपराध है; देश में कोई भूखा मरता है, यह पूरे देश का अपराध है; यह हमारे ख्याल में नहीं आता। यह हमारे ख्याल में ही नहीं आता कि बच्चे पैदा होते हैं और मर जाते हैं, हमारी उम्र बहुत कम, हमारा शरीर कृश, हमारा सारा जीवन बीमारी से भरा हुआ।

हम कहते हैं, यह सब भाग्य है! हमने हर चीज की व्याख्या खोज ली है। इसलिए नहीं कि हम बदल दें जिंदगी को। हमने हर चीज की ऐसी व्याख्या खोजी है कि जिंदगी जैसी है वैसी ही सही साबित हो जाए और हमें कोई तकलीफ न मालूम पड़े।

अगर कोई गरीब है, तो हम कहते हैं, पिछले जन्मों के पाप के कारण वह गरीब है। बात खतम हो गई। एक्सप्लेनेशन मिल गया, व्याख्या मिल गई। अब कुछ करने की जरूरत नहीं। क्योंकि पिछले जन्म के साथ कुछ किया भी तो नहीं जा सकता! जो हो गया है वह हो गया है। और हम कहते हैं कि वह गरीब है तो अपने पापों के कारण गरीब है। जब कि सच्चाई उलटी है, अगर कोई गरीब है तो हम सबके पापों के कारण गरीब है। लेकिन हम एक व्यक्ति पर थोप कर, एक व्याख्या लेकर बैठ गए हैं। और ये व्याख्याएं इतनी पुरानी हो गई हैं कि जब तक हमें पुराने पर शक न हो जाए, तब तक इन व्याख्याओं से मुक्ति नहीं हो सकती।

एक फकीर एक मस्जिद के नीचे से गुजर रहा था। मस्जिद के ऊपर अजान देने कोई चढ़ा होगा, वह गिर पड़ा। फकीर की गर्दन पर गिरा, फकीर की गर्दन टूट गई। उस आदमी को तो कोई चोट न पहुंची, क्योंकि फकीर की गर्दन पर वह सम्हल गया था। फकीर की गर्दन टूट गई, वह अस्पताल में भर्ती हुआ। फकीर के शिष्यों को पता था कि वह फकीर हर चीज में से कुछ न कुछ रहस्य और राज खोज लेता है। उन्होंने सोचा कि अब हम जाकर पूछें कि क्या हालत है? इस गर्दन टूट जाने में कौन सा रहस्य है?

वे गए उस फकीर के पास। उस फकीर से पूछा, इससे तुमने क्या सीखा?

उसने कहा, इससे मैंने एक बात सीखी कि वह सिद्धांत गलत है कि जो गिरे उसी की गर्दन टूटे। गिरे कोई और, गर्दन किसी और की भी टूट सकती है। वह सिद्धांत गलत है। क्योंकि हम न गिरे, न हमें गिरने से कोई मतलब था, न हम मीनार पर चढ़े। चढ़ा कोई और, गिरा कोई और, वह तो बच गया, गर्दन हमारी टूट गई!

जिंदगी एक अंतर्संबंध है, एक इंटर-रिलेशनशिप है। उसमें कोई गिरे, कोई की गर्दन टूट सकती है। लेकिन इस मुल्क ने एक व्याख्या खोजी हुई है कि अगर तुम्हारी गर्दन टूटी है, तो तुम्हीं गिरे होओगे। और कभी गिरे होओगे पिछले जन्मों में, इसलिए अब गर्दन टूटी है। अब उसका पता लगाना मुश्किल है कि किस पिछले जन्म में आप गिरे थे! गिरे थे भी या नहीं गिरे थे! पिछला जन्म था भी या नहीं था!

लेकिन उन सारी व्याख्याओं के आधार पर आपकी गरीबी को समझा दिया गया है। अब गरीबी को बदलने की कोई भी जरूरत न रही। अब गरीबी स्वीकार करनी पड़ेगी, भिखमंगापन स्वीकार करना पड़ेगा, बीमारी स्वीकार करनी पड़ेगी।

हमने एक जीवन-दर्शन विकसित किया है, जिसमें हम सब कुछ जैसा भी है--गंदा, बेहूदा, कुरूप, रुग्ण, विक्षिप्त--सबको स्वीकार कर लेते हैं। और यह स्वीकृति इतनी पुरानी हो गई है कि हमें पता भी नहीं कि कब हमने यह स्वीकृति दी थी! यह बहुत लंबा समय बीत गया, तब से हम स्वीकार करते चले आ रहे हैं। और जब तक हमें पुराने पर शक न हो जाए, तब तक इस स्वीकृति से भी नहीं छूटा जा सकता। और जब तक ये स्वीकृति की जड़ें नहीं टूट जाती हैं, तब तक एक नये समाज का जन्म भी असंभव है। और नये समाज का जन्म न हो, तो हम इसको ही समाज कहते रहेंगे--यह जो करीब-करीब एक पागलखाना हो गया है। करीब-करीब देश एक पागलखाना है।

मैंने सुना है कि जब हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटे, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सीमा पर एक पागलखाना था। और पागलखाने का भी सवाल उठा कि पागलखाना कहां जाए? हिंदुस्तान में जाए कि पाकिस्तान में जाए? और पागलखाने को लेने को कोई भी राजी नहीं था। किसी को फिक्र भी नहीं थी कि पागलखाना कहां जाए। तो पागलखाने के अधिकारियों ने सोचा, पागलों से ही पूछ लें कि तुम जाना कहां चाहते हो? तो उन पागलों से पूछा कि तुम्हें कहां जाना है? हालांकि तुम कहीं जाओगे नहीं, रहोगे यहीं! लेकिन फिर भी तुम हिंदुस्तान में जाना चाहते हो कि पाकिस्तान में?

उन पागलों ने कहा, बड़ी अजीब बात है! हम तो समझते थे हम पागल ही अजीब बातें करते हैं, आप भी अजीब बातें करते हैं! जब जाएंगे कहीं भी नहीं, रहेंगे यहीं, तो हिंदुस्तान या पाकिस्तान में जाने का सवाल कहां उठता है? आप भी बड़े मजे की बात करते हैं। रहेंगे यहीं, और फिर पूछते हैं, जाना कहां है?

फिर भी उन लोगों ने कहा, तुम समझोगे नहीं, ये जरा बहुत टेढ़ी राजनीति की बातें हैं। तुम तो साफ-साफ यह कहो, तुम कहां जाना चाहते हो?

उन्होंने कहा, हम कहीं नहीं जाना चाहते, हम यहीं अच्छे हैं।

उन्होंने कहा, यह सवाल ही नहीं है, रहोगे तुम यहीं।

उन पागलों ने कहा, जब हम यहीं अच्छे हैं, हम कहीं क्यों जाएं?

बड़ी मुश्किल हो गई। फिर सोचा कि पूछ लो कौन हिंदू है, कौन मुसलमान। जो हिंदू हो उसको हिंदुस्तान भेज दो, जो मुसलमान हो उसको पाकिस्तान भेज दो। उनसे पूछा, तुममें हिंदू कौन है, मुसलमान कौन है?

उन्होंने कहा, हमें कुछ पता नहीं, हम सिर्फ आदमी हैं। हिंदू-मुसलमान? हमें तो इतना ही पता है कि हम सिर्फ आदमी हैं।

उन पागलों ने कहा कि हमें सिर्फ इतना पता है कि हम आदमी हैं। और पागलखाने के बाहर जो घूम रहे हैं, उनसे पूछो। उनमें से कोई न कहेगा हम आदमी हैं। कोई कहेगा, हम हिंदू हैं; कोई कहेगा, हम मुसलमान हैं; कोई कहेगा, हम ईसाई हैं। और अगर भगवान की दुनिया में कहीं कोई हिसाब होता होगा, तो उस दिन लिख

लिया गया होगा कि इस पागलखाने में ऐसे आदमी रहते हैं जो पागल नहीं हैं, और पागलखाने के बाहर ऐसे आदमी रहते हैं जो पागल हैं।

लेकिन कौन सुनता था उनकी! उन्होंने बहुत कहा कि हम सिर्फ आदमी हैं।

अधिकारियों ने कहा, बंद करो यह बकवास! साफ-साफ बताओ कि तुम हिंदू हो कि मुसलमान? हमें आदमी से कोई मतलब नहीं है, हम हिंदू-मुसलमान जानना चाहते हैं।

उन पागलों ने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल हो गई, हम कैसे पता लगाएं? ज्यादा से ज्यादा हम यह कह सकते हैं कि हम पागल हैं। अगर आप आदमी नहीं मानते, तो हम पागल हैं। मगर हिंदू-मुसलमान, हमें कुछ पता नहीं है।

लेकिन अधिकारी न माने। उन्होंने फिर एक रास्ता खोजा--कि बीच से एक दीवाल डाल दी; उस तरफ पड़ जाए कमरा जिसका वह पाकिस्तान में चला जाए, इस तरफ पड़ जाए वह हिंदुस्तान में चला जाए।

पागल बंट गए। आधे पागल हिंदुस्तान में आ गए, आधे पागल पाकिस्तान में चले गए। अब वे पागल दीवाल पर चढ़ कर एक-दूसरे को गालियां देते हैं। कुछ उनमें होशियार भी हैं, समझदार भी हैं। वे पूछते हैं कि बड़ी अजीब बात है! बड़ी अजीब बात है, हम वहीं के वहीं हैं, सिर्फ बीच में एक दीवाल हो गई, तुम हमारे दुश्मन हो गए, हम तुम्हारे दुश्मन हो गए! और कल तक हम साथ थे और कोई किसी का दुश्मन नहीं था। यह क्या हो गया है?

लेकिन पागलों को कौन समझाए! क्योंकि जब समझाने वाले ही सब पागल हों, तो फिर पागलों को समझाने के लिए कौन मिल सकता है?

यह देश सारे मसलों के संबंध में एक पागलखाना हो गया है! किसी चीज के संबंध में सूझ-बूझ का कोई सवाल नहीं है--किसी चीज के संबंध में! और क्यों नहीं है? उसके कुछ कारण हैं। सबसे बड़ा कारण मैं आपसे कहना चाहता हूं, वह यह है कि हमने जब से यह मान लिया है कि सूझ-बूझ के ठेकेदार पहले हो चुके, अब हमको कोई सूझ-बूझ की जरूरत नहीं है, तब से हमने सूझ-बूझ को छुट्टी दे दी है। सब ऋषि-मुनि, जो भी जानने योग्य था, जान गए और लिख गए। और सब सत्य जो जाने जा सकते थे, वे हमारी गीता में, हमारे वेद में, हमारे उपनिषदों में लिखे हैं। जब से हमने यह माना कि हमारी किताबें पूर्ण हो गईं; जब से हमने यह माना कि हमारे ज्ञानी सर्वज्ञ हैं; जब से हमने यह माना कि जानने योग्य सब जाना जा चुका है--उसी दिन से हिंदुस्तान ने अपनी प्रतिभा नष्ट कर दी। उसी दिन से हिंदुस्तान में बुद्धि का विकास रुक गया।

जो बेटे अपने बाप पर शक नहीं करते, वे बेटे नालायक हैं, वे कभी आगे नहीं बढ़ते। जो बेटे अपने बाप को पकड़ कर अंधे की तरह खड़े हो जाते हैं, वे वहीं ठहर जाते हैं जहां बाप ठहर गया। निश्चित ही बाप से आगे जाना जरूरी है, नहीं तो कोई भी समाज रुक जाता है।

हिंदुस्तान रुक गया है। हम कंटेम्प्रेरी नहीं हैं, हम दुनिया के समसामयिक नहीं हैं। यह भूल कर मत कहना कि हम बीसवीं सदी में रहते हैं। हिंदुस्तान में मुश्किल से एकाध, दो-चार आदमी मिलेंगे, जो बीसवीं सदी में रहते हैं। हिंदुस्तान में कोई ईसा से दो हजार साल पहले रहता है, कोई तीन हजार साल पहले रहता है। हिंदुस्तान में कई सदियों के लोग एक साथ रह रहे हैं। हिंदुस्तान का मस्तिष्क पुराना हो गया है। और पुराना हो जाने का बुनियादी कारण यह है कि हमने यह मान लिया कि अब मस्तिष्क के विकास की कोई जरूरत नहीं है, विकास हो चुका है। हमने यह स्वीकार कर लिया कि सब जो जाना जा सकता था, वह जाना जा चुका है।

हमारी किताबों में सब लिखा है। और इसलिए कोई मुसीबत आए, तो अपनी पुरानी किताब खोलो और उसमें से समाधान निकालो।

समस्याएं नई हैं और समाधान पुराने हैं; देश पागल न होगा तो और क्या होगा! समस्याएं जब नई हों, तो नये समाधान चाहिए। और समस्याएं रोज नई हो जाती हैं, पुरानी समस्या कभी लौट कर आती ही नहीं। समस्या रोज नई है। और हम? हम पीछे खोजते हैं कि पुराना समाधान क्या है? और तब एक मुसीबत खड़ी हो जाती है।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। आपने भी सुनी होगी, लेकिन आधी सुनी होगी, क्योंकि कुछ बेईमान लोग सब अच्छे सत्यों को आधा करके बांट-बांट कर बता रहे हैं! और आधा सत्य जो है वह असत्य से भी खतरनाक होता है। असत्य तो दिखाई पड़ता है कि असत्य है; आधे सत्य में भ्रम होता है कि सत्य है। और आधा सत्य जैसा कोई सत्य हो ही नहीं सकता। सत्य या तो होता है तो पूरा या नहीं होता।

एक आधी कहानी आपने भी सुनी होगी, स्कूल में पढ़ी होगी, बचपन से ही पढ़ाते हैं। एक सौदागर है। टोपियां बेचता है। वह टोपियां बेचने गया है एक मेले में। एक वृक्ष के नीचे रुका है; थक गया है, सो गया है। बंदर उतरे, उसकी टोपियां लगा कर ऊपर चढ़ गए। सौदागर की आंख खुली, वह हंसा। उसने सोचा कि अच्छा, बंदर बहुत अकड़ रहे हैं टोपियां लगा कर! बंदर हमेशा टोपियां लगा कर अकड़ते हैं। और टोपियां अगर खादी की हों, तब तो फिर कहना ही क्या! फिर तो अकड़ बहुत बढ़ जाती है। एक तो बंदर, और फिर खादी की टोपी! फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। लेकिन सौदागर ने कहा कि बंदर ही तो ठहरे, इनसे टोपी छीनने में कोई कठिनाई है? उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। बंदरों ने भी अपनी टोपियां निकाल कर फेंक दीं। सौदागर ने टोपियां इकट्ठी कीं और घर चला गया। इतनी कहानी सुनी होगी। यह आधी कहानी है।

सौदागर का बेटा बड़ा हुआ और सौदागर के बेटे ने भी टोपियां बेचनी शुरू कीं। क्योंकि जो बाप करता है, वही बेटे को करना चाहिए, ऐसा नियम है। और जब बाप ने टोपियां बेचीं, तो बेटा भी टोपी बेचेगा। बेटा भी उसी झाड़ के नीचे रुका जब मेले में बेचने गया, जहां बाप रुका था। क्योंकि नियम यह हैः बाप जहां रुके, वहीं बेटे को रुकना चाहिए। उसी जगह उसने टोपियों की टोकरी रखी, जहां बाप ने रखी थी। ऊपर बंदर थे; वही बंदर तो नहीं थे, उनके बेटे थे, वे बैठे थे। सौदागर का बेटा सो गया। बंदर उतरे और टोपियां लगा कर ऊपर चढ़ गए।

बंदर हमेशा तलाश में रहते हैं कि कहीं टोपी मिल जाए, तो लगाएं और चढ़ जाएं। बंदर इसी तलाश में रहते हैं कि कहीं टोपी भर मिल जाए, और लगा लें और चढ़ जाएं और बैठ जाएं ऊपर वृक्ष के। वह वृक्ष चाहे दिल्ली का हो और चाहे अहमदाबाद का हो, इससे कोई फर्क नहीं। छोटे वृक्ष हैं, बड़े वृक्ष हैं, कई तरह के वृक्ष हैं। अहमदाबाद के वृक्ष हैं, दिल्ली के वृक्ष हैं। मगर टोपी मिल जाए तो कोई चढ़ जाए। वे बंदर चढ़ गए टोपी लगा कर।

सौदागर का बेटा उठा, उसने कहा, अरे! पर उसे ख्याल आया कि बाप ने कहानी बताई थी। और बाप ने कहा था, टोपी फेंक देना। उसने कहा, ठीक है बंदरो, तुम मत समझो; हमको पता है रास्ता तुमसे टोपी छीनने का। उसने टोपी निकाल कर फेंक दी। लेकिन एक चमत्कार हुआ, कोई बंदर ने टोपी न फेंकी, एक बंदर पर टोपी नहीं थी, वह भी उतरा और नीचे की टोपी ले गया।

यह कहानी पूरी हुई। वह टोपी भी जो थी सौदागर के बेटे की, वह भी बंदर ले गया। बंदर अब तक सीख चुके थे, लेकिन वह सौदागर का बेटा अब तक नहीं सीखा। बंदर सीख गए थे, पुरानी तरकीब समझ गए थे। और

उन्होंने कहा, अब धोखा नहीं दे सकते! लेकिन सौदागर का बेटा सोच रहा था, पुराना समाधान काम आ जाएगा।

बंदरों के साथ भी पुराना समाधान काम नहीं आ सकता है, तो जिंदगी के साथ तो कैसे आएगा? जिंदगी रोज बदल जाती है। वही जिंदगी नहीं है जो कल थी, वही जिंदगी नहीं है जो परसों थी, जिंदगी रोज बदल जाती है। जो हम आज तय करेंगे, वह कल बेमानी हो जाएगा।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि समाधान चाहिए। सवाल यह है कि समाधान करने वाला चित्त चाहिए। बंधे हुए समाधान का सवाल नहीं है। एक ऐसा चित्त चाहिए मुल्क के पास कि उसके सामने कैसी भी समस्या हो, वह उसको एनकाउंटर कर सके, मुकाबला कर सके और समाधान खोज सके।

हमारी क्या आदत है? हम कहते हैं, समाधान रेडीमेड तैयार रखो। और रेडीमेड समाधान जो आदमी सीख जाता है, उसको हम ज्ञानी कहते हैं।

उससे ज्यादा अज्ञानी खोजना मुश्किल है, जिसके पास रेडीमेड समाधान हो। जो कहता है कि ऐसा हुआ था, तो फौरन उठा कर देखो कि गांधी जी ने इसके उत्तर में क्या किया था, बस वही हम करेंगे! गांधी जी ने जो किया, वह उनका, समस्या के सामने उनका मुकाबला था। कृष्ण ने क्या किया, उठा कर देखो जल्दी से गीता में, हम भी वही करेंगे! कृष्ण ने जो किया, वह उनकी समस्या का मुकाबला था। लेकिन तुम्हारी समस्या का मुकाबला तुम करो। और जो कौम गुरुओं से बंध जाती है, वादों से बंध जाती है, सिद्धांतों से बंध जाती है, शास्त्रों से बंध जाती है, उसकी जिद यह होती है कि हम न सोचेंगे। सोचने का काम तो कोई और कर चुके हैं। हम तो बस रेडीमेड हमारे पास जवाब तैयार हैं, हम उन्हीं को दोहरा देंगे और उन्हीं से हल कर लेंगे।

हिंदुस्तान इसलिए रोज सड़ता जाता है। बीस साल आजाद हुए मुल्क को हुए, बीस-बाईस सालों में मुल्क ने जरा भी प्रतिभा नहीं दिखलाई, टैलेंट नहीं दिखलाई, जरा भी जीनियस का कोई पता नहीं चला। ऐसा नहीं चला कि इन बाईस सालों में हमने जिंदगी को जीने का और मुकाबला करने का कोई भी प्रतिभापूर्ण रास्ता खोजा हो। हम सिर्फ बंधी-बंधाई लीकों को दोहरा रहे हैं। हम एकदम उधार कौम हैं, जिसके पास अपना कोई दिमाग ही नहीं। चाहे उधारी पीछे से आती हो, और चाहे अमेरिका से आए, चाहे रूस से आए, चाहे चीन से आए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारा दिमाग उधार है।

हमारा दिमाग उधार है, हिंदुस्तान का कम्युनिस्ट तक भी उधार दिमाग का होता है! वह भी खोजेगा फौरन मार्क्स की किताब खोल कर! वह जैसा कृष्ण की किताब का खोलने वाला है, गांधी की किताब खोलने वाला है, वैसा ही वह मार्क्स की किताब खोलने वाला है। लेकिन वह जो दिमाग है, वह दिमाग यह है कि कहीं समाधान तैयार है, हम उसे निकाल लें। लेकिन हम समाधान को पैदा करें, हम समस्या से जूझें, हम समस्या को जीएं और पहचानें और खोजें कि क्या समाधान हो सकता है--वह हमारी दृष्टि नहीं रह गई है, वह हमारे मन का ढांचा नहीं रह गया है।

इसलिए देश कोई भी हल नहीं कर पाता। उलझनें नई होती चली जाती हैं, सुलझाव पुराने। एक तरफ सुलझाव इकट्ठे होते हैं, एक तरफ उलझनें इकट्ठी होती हैं और हम बेचैन होते चले जाते हैं। कुछ भी हल नहीं होता। कुछ भी हल होने की क्षमता ही हमने खो दी है, ऐसा मालूम पड़ता है।

मैंने सुना है, एक गांव में सम्राट आने वाला था। और गांव के लोगों ने कहा कि गांव के जितने भी समझदार लोग हैं, सम्राट से मिलें, सम्राट का स्वागत करें। गांव में एक संन्यासी भी था, एक फकीर भी था। गांव के लोगों ने कहा, हमारे मंडल का प्रमुख वही होगा। लेकिन राजा के अधिकारियों ने कहा कि फकीर का कोई

भरोसा नहीं, उसकी बातचीत का कुछ ठिकाना नहीं, कुछ भी कह दे। तो हम उसको तैयार उत्तर सिखाएंगे। वह उत्तर तैयार रखे। वही उत्तर दे, राजा जब पूछे। उसकी बात का कोई ठीक नहीं है। राजा पूछे कि तुम्हारी उम्र कितनी है? और वह कहे कि मैं अनादि-अनंत आत्मा हूं। तो जरा भद्द हो जाएगी और अजीब बातें हो जाएंगी। सीधी बात! जब राजा पूछे, उम्र कितनी है? तो कहो कि साठ वर्ष उम्र है। राजा पूछे, आप कब से साधना कर रहे हो? तो कहो कि तीस वर्ष से साधना कर रहा हूं। ऐसा नहीं कि जन्मों-जन्मों से साधना चल रही है।

फकीर ने कहा, तो फिर आप बता दें। जो आप कहेंगे, वही मैं कह दूंगा।

फकीर ने रट लिया कि साठ वर्ष मेरी उम्र है, और तीस वर्ष से मैं साधना कर रहा हूं। इस तरह के उत्तर। राजा आया, फकीर सामने गया। राजा को भी कह दिया गया था कि फकीर से यही पूछना, कुछ और मत पूछ लेना। लेकिन राजा भूल गया। उसने यह सोचा भी न था कि मामला इतना गड़बड़ होगा। उसने कहा, आप कब से साधना कर रहे हैं?

फकीर ने कहा, साठ वर्ष से।

उत्तर तो तैयार था। फकीर एक क्षण तो सोचा कि यह तो बड़ी गड़बड़ हुई जा रही है। लेकिन जब उत्तर तय है और बदलना अपने हाथ में नहीं है, तो उसने कहा, साठ वर्ष से।

राजा ने कहा, आश्चर्य! आपकी उम्र कितनी है?

क्योंकि वह साठ वर्ष का तो मालूम ही पड़ता था।

फकीर ने कहा, तीस वर्ष।

राजा ने कहा, या तो मैं पागल हूं या आप!

फकीर ने कहा, दोनों पागल हैं। क्योंकि आप भी सीखे हुए प्रश्न पूछ रहे हैं और मैं भी सीखे हुए जवाब दे रहा हूं। दोनों पागल हैं! और जब आप गलत सवाल पूछ रहे हैं, तो हम गलत जवाब देंगे ही, क्योंकि हम तो जवाब देने को स्वतंत्र हैं ही नहीं। हमें तो सिखा दिया है, वही हम जवाब दे रहे हैं।

इस देश की जिंदगी में ऐसा बहुत जोर से हो रहा है। सब जवाब सीखे हुए हैं। और सब सवाल नये हैं। उनके बीच कोई तालमेल नहीं बैठता। और हम इतने डरे हुए लोग हैं कि कहीं पुराने जवाब छूट न जाएं, इसलिए हम कहते हैं, चाहे सवाल कोई भी हो, हम तो पुराना जवाब ही देंगे। सीखते भी नहीं, जिंदगी से कोई पाठ भी नहीं सीखते!

हिंदुस्तान एक हजार साल गुलाम रहा। हमने कोई पाठ नहीं सीखा। हमने क्या पाठ सीखा कि हिंदुस्तान क्यों गुलाम रहा? हिंदुस्तान से पूछो कि तुमने एक हजार साल की गुलामी से पाठ क्या सीखा? तो आप हैरान होंगे, जो पाठ सीखना था वह हिंदुस्तान ने सीखा ही नहीं। क्योंकि वह जो बातें कर रहा है, वे बताती हैं कि वह उन्हीं बातों को फिर दोहरा रहा है जिनकी वजह से वह एक हजार साल गुलाम रहा।

हिंदुस्तान एक हजार साल क्यों गुलाम रहा? हिंदुस्तान कमजोर था? हिंदुस्तान कम संख्या थी? हिंदुस्तान में जो दुश्मन आए, वे बहुत बड़ी तादाद में थे? हिंदुस्तान की जमीन पर आकर दुश्मनों ने हराया। हम तो कहीं लड़ने नहीं गए। तो हमारे पास तो बड़ी संख्या थी, दुश्मन कितना आ सकता था! लेकिन बात क्या थी?

एक बात थी कि हिंदुस्तान टेक्नॉलॉजी में हमेशा पीछे रहा। इसके सिवाय हिंदुस्तान की गुलामी का कोई भी कारण नहीं। अगर कोई कहे तो बेईमान है।

जब हिंदुस्तान पर सिकंदर ने हमला किया, तो सिकंदर तो घोड़ों पर सवार आया और पोरस हाथियों पर लड़ने गया। पोरस सिकंदर से जरा भी कमजोर आदमी नहीं था। बल्कि अगर दोनों अकेले सामने मैदान में

लड़ते, तो सिकंदर दो कौड़ी का साबित होता। पोरस बहुत अदभुत आदमी था। लेकिन टेक्नॉलॉजी गलत थी और पिछड़ी हुई थी। हाथी शादी-विवाह में, बारात वगैरह में ठीक है। बारात निकालनी हो, बड़ा अच्छा है। किसी साधु महाराज का जुलूस निकालना हो, बहुत अच्छा है। लेकिन हाथी युद्ध के मैदान पर बेमानी है। हाथी, हारना हो तो युद्ध के मैदान पर ठीक है। और घोड़ों के सामने! घोड़ा तेज है। टेक्नॉलॉजिकली, युद्ध में घोड़ा ज्यादा सबल और सक्षम है। थोड़ी जगह घेरता है, तेजी से भागता है, जल्दी रुख बदलता है, कहीं भी निकल कर, बच कर भाग सकता है। हाथी बहुत सुस्त है एक अर्थों में। हाथी पर लड़ा पोरस--ताकत ज्यादा थी। घोड़ों पर लड़ा सिकंदर--ताकत उतनी न थी। लेकिन सिकंदर जीता और पोरस हारा।

फिर आए मुसलमान। और मुसलमान बारूद लेकर आए। और हिंदुस्तान में बारूद की कोई ईजाद न थी। और हिंदुस्तान अपना वही तीर-तरकस और तलवार लिए खड़ा रहा। बारूद के सामने तीर-तरकस नहीं जीतते। मुसलमान नहीं जीते, हिंदुस्तान नहीं हारा; तीर-तरकस हारे, बारूद जीती। टेक्नॉलॉजी जीतती है। विकसित टेक्नॉलॉजी हमेशा अविकसित टेक्नॉलॉजी से जीत जाती है।

फिर अंग्रेज आए। वे और बढ़िया तोपें लेकर आए थे। और हम वही पुराना, जैसे चिड़िएं वगैरह भगाने का सामान हो खेत में, उस तरह की चीजें लिए बैठे थे। अंग्रेज कितनी थोड़ी ताकत लेकर आया था, लेकिन उसके पास तोपें थीं। और तोपों ने हमें मुश्किल में डाल दिया। हमारी समझ के बाहर हो गया, हम क्या करें।

हिंदुस्तान एक हजार साल गुलाम रहा, क्योंकि हिंदुस्तान वैज्ञानिक रूप से कम विकसित रहा। और कोई कारण नहीं है। हिंदुस्तान अब भी वैज्ञानिक रूप से कम विकसित है और कम विकसित ही रहेगा। क्योंकि हिंदुस्तान के समझाने वाले लोग हिंदुस्तान को एंटी-टेक्नॉलॉजिकल बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं और एंटी-साइंटिफिक बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं। वे कहते हैं, विज्ञान की क्या जरूरत है? तकनीक की क्या जरूरत है? हम तो चर्खा-तकली कात लेंगे और हमारा काम हो जाएगा।

तुम कातो चर्खा-तकली, लेकिन दुनिया इसकी फिक्र नहीं करती कि आप चर्खा-तकली कात रहे हैं, इसलिए आपको बड़ा आदर दिया जाए, कि आपको स्वतंत्र रखा जाए! यह सब नहीं होने वाला है।

और इस मुल्क का मस्तिष्क जो है, वह इस तरह ढाला गया है पांच-छह हजार सालों में कि जब भी हमें कुछ विकसित बात कही जाए, तो हमारी समझ के बाहर होती है; अविकसित बात कही जाए, तो हमारी समझ में एकदम से आती है। अगर कोई एलोपैथी की बात कहे, तो हम कहेंगे यह... । अगर कोई आयुर्वेद की बात कहे, तो हम कहेंगे, यह बिल्कुल ठीक है, ऋषि-मुनियों का विज्ञान है। सवाल एलोपैथी और आयुर्वेद का नहीं है, सवाल आधुनिक और पुरातन का है। नया जीतेगा, पुराना हारेगा। और जो पुराने को पकड़े रहेगा, उसके साथ वह भी हारेगा, वह बच नहीं सकता।

इस जगत में निरंतर नये की जीत है। और नये की जीत स्वाभाविक है। क्योंकि नये का अनुभव पुराने से ज्यादा है। नये का प्रयोग ज्यादा है। नये की प्रक्रिया और भी अनुभवों में से गुजर चुकी है। नया जीतता है, पुराना हारता है।

भारत सदा से पुराना है, इसलिए हारता रहा है। अब भी भारत पुराना है। अब भी भारत के पास नया क्या है? अगर रूस में जाओ और बच्चों से पूछो, तो वे सपने देख रहे हैं चांद पर मकान बनाने के। अमेरिका में जाओ, तो वे मंगल की यात्राओं के ख्वाबों से भरे हैं। और हिंदुस्तान के बच्चों के पास जाओ, वे अभी भी रामलीला देख रहे हैं।

रामलीला देखना इतना बुरा नहीं है, ऐसे रामलीला बहुत बढ़िया चीज है, लेकिन कभी-कभी देखने के लायक है। उसको ही देखते रहना बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

हिंदुस्तान का दिमाग पुराने से ग्रसित है। नये का न कोई आमंत्रण है, न कोई स्वीकृति है। और मजे की बात यह है कि अगर हम किसी तरह नये को स्वीकार भी करते हैं, तो वह ऐसे बेमन से करते हैं, वह ऐसी मजबूरी में करते हैं, वह हमारे लिए नेसेसरी ईविल की तरह मालूम पड़ता है, एक जरूरी बुराई की तरह स्वीकार करते हैं कि ठीक है, अब कोई रास्ता नहीं है, तो चलो, इसको स्वीकार कर लेते हैं।

लेकिन जब कोई बेमन से स्वीकार करता है नये को, तो नया ऊपर रह जाता है, पुराना भीतर रह जाता है। इसलिए हम ऊपर से नये को स्वीकार भी कर लें, तो हमारे वस्त्रों से ज्यादा कुछ भी नया नहीं हो पा रहा है। हां, नेकटाई है, वह कंठ-लंगोट, वह नया हो गया है! जूते नये हो गए हैं, कपड़े नये हो गए हैं, लेकिन भीतर जो आदमी खड़ा हुआ है, एकदम पुराना है!

अब लड़का है, टाई लगाए हुए खड़ा है, उसने बढ़िया नैरोकट कपड़े पहन रखे हैं, लेकिन हनुमान जी के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं कि परीक्षा में पास करवा देना तो नारियल चढ़ाएंगे। अब यह हद हो गई! अगर हनुमान जी का भी वश चले तो ऐसा चांटा मारें वे! लेकिन वह ऊपर से कपड़े भर नये हो गए हैं, दिमाग तो वही का वही है। एम.एससी. लड़कों को मैं देखता हूं कि जाकर मढ़िया में प्रसाद चढ़ा रहे हैं! एम.एससी. पढ़ रहे हैं!

कलकत्ते में एक घर में मैं मेहमान था एक डाक्टर के घर। एफ.आर.सी.एस. हैं, बड़े भारी फिजीशियन हैं कलकत्ते के। सांझ को मुझे लेकर मीटिंग में जाने को थे, गाड़ी में जा ही रहे थे, चढ़ ही रहे थे कि उनकी लड़की को छींक आ गई। मुझसे बोले, एक मिनट रुक जाइए।

मैंने कहा, पागल हो गए हो? डाक्टर हो, तुम भलीभांति जानते हो कि छींक क्यों आती है। और तुम्हारी लड़की को छींक किसी भी वजह से आए, मेरे रुकने का क्या संबंध है? मेरा क्या कसूर है? और तुम्हारी लड़की को छींक आ गई तो अब सारी दुनिया रुक जाए क्या? मामला क्या है, तुम्हारी लड़की की छींक में ऐसी विशेषता क्या है?

उन्होंने कहा, नहीं, यह कोई बात नहीं। आप कहां ले गए! मगर क्या हर्जा है? मैं जानता हूं कि छींक में कुछ नहीं होता, लेकिन एक मिनट रुकने में हर्जा क्या है?

मैंने उनसे कहा, हर्जा बहुत भारी है। एक मिनट रुकने का सवाल नहीं है। यह बताता है कि तुम डाक्टरी ऊपर से सीख आए हो, भीतर वह जो ग्रामीण भारतीय है वह बैठा हुआ है, वह कहीं गया नहीं है। और हर्जा भारी है। क्योंकि आत्मा पुरानी हो और शरीर नया हो जाए, तो इतना तनाव पैदा होगा देश के भीतर, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि असली गति आत्मा से आती है, शरीर से नहीं आती। शरीर तो बोझ बन जाएगा। अगर आत्मा पुरानी है और शरीर नया है, तोशरीर बोझ बन जाएगा, क्योंकि आत्मा रोकेगी पीछे की तरफ। और शरीर की क्या ताकत है?

अभी मैं जालंधर था। एक इंजीनियर मित्र हैं, उन्होंने एक बड़ा मकान बनाया। पंजाब के बड़े इंजीनियर हैं। जर्मनी में शिक्षा ली है। मुझसे कहने लगे, उदघाटन कर दें। मैंने कहा, मैं चलूंगा। उदघाटन करने गया, उनके मकान का फीता काट रहा हूं, देखता हूं--सामने एक हंडी लटकी हुई है। हंडी पर बाल लगाए हुए हैं, आदमी का चेहरा बना हुआ है। मैंने पूछा, यह क्या है? उन्होंने कहा कि नजर न लग जाए, इसलिए इसे यहां लटकाया हुआ

है। मैंने उनसे कहा, मेरा वश चले तो चोरों-बदमाशों को कारागृह से छोड़ दूं और तुम जैसे लोगों को कारागृह में बंद कर दूं।

एक इंजीनियर भी सोचता है कि मकान को नजर लगती है! तो फिर इस मुल्क का सौभाग्य उदय नहीं हो सकता। यह इंजीनियर ऊपर से होकर आ गया, भीतर वही पुराना आदमी बैठा हुआ है, जो हटता नहीं। वह बैठा है मजबूती से बांध कर। हां, अगर और दूसरी बातचीत करनी हो, ठीक। लेकिन अपना मकान बनाना हो, तो वह भीतर का आदमी कहेगा, क्या हर्जा है, हंडी लटका दो! कोई हर्जा तो है ही नहीं। अगर फायदा हुआ तो हो जाएगा, नहीं तो चार पैसे की हंडी में हर्जा क्या है? वह भीतर का आदमी ये दलीलें देता है, और हंडी लटका दी जाती है।

भारत बेमन से स्वीकार कर रहा है नये को। और नये की अस्वीकृति के लिए उसने खूब दलीलें निकाली हुई हैं। एक दलील तो उसने यह निकाली हुई है कि सब नई चीज को वह कहता है कि यह पश्चिम की है।

यह बात झूठ है। पश्चिम का कहने से मामला हल नहीं होगा। नये का अर्थ है आधुनिक, मॉडर्न--वेस्टर्न नहीं। नये का अर्थ है आधुनिक। लेकिन भारत के मन में पुराने की पकड़ तेज है। और अभी हम पश्चिम के गुलाम थे, तो पश्चिम के प्रति घृणा भी तेज है। तो भारत का पुराणपंथी कहता है कि देखो, सब पश्चिमी हुए जा रहे हैं!

सवाल पश्चिमी होने का नहीं है, सवाल आधुनिक होने का है। और चूंकि पश्चिम में नये का जन्म हो रहा है, इसलिए अनिवार्य हो गया है कि वह जो नया है वह स्वीकार किया जाए या फिर नये को जन्म दिया जाए। लेकिन अगर हमने यह डर रखा कि कहीं पश्चिमी प्रभाव में न आ जाएं, तो हम आधुनिक होने से बच जाएंगे।

और हम आधुनिक होने से बचे तो एक सौ वर्षों के भीतर हमारी वह हालत होगी, जो हमारे मुकाबले आदिवासियों की है; उससे भी बदतर हो सकती है, पश्चिम के मुकाबले। आज भी हो गई है। आज भी कल्पना के बाहर है कि हमारे और पश्चिम के बीच कितना फासला हो गया है! आज अमेरिका और हमारे बीच कैसा फासला है, यह कल्पना के बाहर है, एकदम कल्पना के बाहर है! और यह सौ वर्षों में इतनी तेज गति हो जाने वाली है कि अगर हमने चर्खे-तकली की बातें जारी रखीं, और कोई भी बहाने खोज कर हमने शोरगुल मचाया, तो हम जो अंतिम नुकसान पहुंचा सकते हैं मुल्क को वह यह कि अगर पचास वर्षों तक हिंदुस्तान में तकनीक ने इतना विकास नहीं किया कि हम पश्चिम के साथ खड़े हो जाएं, तो हमारे और पश्चिम के बीच ऐसी दरार हो जाएगी कि उस दरार को भरना फिर असंभव हो जाएगा।

आने वाले पचास वर्षों में भारत के युवकों को पांच हजार वर्ष का फासला पूरा करना है। अन्यथा फिर हम पिछड़ेंगे और हम पूरा नहीं कर पाएंगे। बहुत मुश्किल हो जाएगा। लेकिन बड़ा डर लगता है कि युवक कैसे पूरा करेगा? क्योंकि वह युवक भी एक अर्थ में युवक नहीं है, उसके भीतर भी पुराना आदमी बैठा हुआ है। वह भी बूढ़ा है। हिंदुस्तान में जवान आदमी खोजना बहुत मुश्किल है।

आप कहेंगे, इतने जवान आदमी घूम रहे हैं!

वे सब घूम रहे हैं, बस वे ऊपर से जवान हैं, भीतर उनके बूढ़ा आदमी बैठा है। कितने हिंदुस्तान के लड़के पहाड़ पर चढ़ते हैं? कितने हिंदुस्तान के लड़के समुद्र् लांघते हैं? कितने हिंदुस्तान के लड़के नये की खोज पर निकलते हैं? कितने हिंदुस्तान के लड़के अज्ञात में प्रवेश करने की चेष्टा करते हैं? कितने हिंदुस्तान के लड़के यह कहते हैं कि पुरानी लीक पर चलने से हम इनकार करते हैं?

जवानी का लक्षण यह है कि वह कहे कि हम पुरानी लीक पर नहीं चलेंगे; हम कुछ नया रास्ता बनाएंगे। हमें भी जिंदगी मिली है, हम भी कुछ नई जिंदगी जीएंगे।

और ध्यान रहे, जिंदगी का रस केवल वे ही लोग उपलब्ध कर पाते हैं, जो नये होने की और नई तरफ जाने की कोशिश करते हैं।

लेकिन हमारे मुल्क में लोग समझाएंगे--नया? नया कभी हुआ है? आकाश के नीचे सब पुराना है। नया कभी हुआ ही नहीं। वही सूरज है, वही चांद है, वही वृक्ष हैं, वही मौसम हैं--सब वही है, नया है क्या?

यह मुल्क समझाता है, नया कुछ भी नहीं है, सब पुराना है।

और मैं आपसे कहना चाहता हूं, पुराना कभी भी कुछ नहीं है; सब नया है। कल जो सूरज निकला था, वह आज नहीं निकला है; आज दूसरा सूरज निकला है। आप एक घंटे मुझे सुन कर जाएंगे, तो इस ख्याल में मत रहना कि आप वही आदमी जा रहे हैं जो आए थे। इस एक घंटे में बहुत गंगा का पानी बह जाएगा। आपके भीतर भी बहुत पानी बह जाएगा। आप दूसरे आदमी ही जाने वाले हैं। आप वही आदमी नहीं हैं फिर यहां से जाते समय जो आए थे। इस एक घंटे में कुछ तो हुआ। आप मरे हुए तो नहीं हैं। मुर्दा अगर हम लाते इस कमरे में, तो घंटे भर के बाद भी वह वही होता। जिंदा आदमी--हां, कुछ मुर्दे भी आ गए होंगे, तो वे वही होंगे--जिंदा आदमी तो बदलेगा। जिंदगी का मतलब बदलाहट है। और जिंदगी प्रतिपल बदल रही है। और जितनी तेजी से बदलती है जिंदगी, जितनी डायनेमिक होती है, उतनी जिंदगी है।

लेकिन हिंदुस्तान में कुछ नहीं बदलता। और हिंदुस्तान का मन ऐसा पकड़ लिया है कि सब पुराना है, सब वही है, सब सदा से वही है।

मैंने सुनी है एक कहानी, आपने भी सुनी होगी, कि चूहों ने एक दफा सभा की और बिल्ली के लिए सोचा--क्या करें, क्या न करें! तो उन्होंने कहा, अपनी पुरानी किताब खोलो। पुरानी किताब खोली--बिल्लियों के संबंध में क्या लिखा है पुराने चूहों ने? पुराने चूहों ने लिखा है कि एक दफा और सभा हुई थी, कई दफे सभा हो चुकी है। बिल्ली के गले में घंटी बांधी जाए, यह ऋषियों ने कहा है--चूहों के ऋषियों ने--कि बिल्ली के गले में घंटी बांधी जाए। अगर घंटी बंध जाए, तो फिर बिल्ली का कोई डर नहीं है। यह तो समाधान साफ है। लेकिन फिर किसी बूढ़े चूहे ने कहा, लेकिन घंटी बंधेगी कैसे? फिर लोगों ने कहा, यह बात तो सच है, सिद्धांत तो सही है, लेकिन इसका व्यवहार क्या होगा? घंटी बंधे कैसे? घंटी बांधे कौन? फिर बात वहीं अटक गई। सिद्धांत बिल्कुल सही है, लेकिन घंटी बांधे कौन? दो नये चूहों ने, कालेज में पढ़ते होंगे, उन्होंने कहा कि छोड़ो फिक्र, हम कल बिल्ली के गले में घंटी बांध देंगे।

लेकिन बुड्ढों ने कहा, यह कभी हुआ ही नहीं। यह कभी हुआ ही नहीं, कभी हो भी नहीं सकता। क्या तुम पागल हो गए हो? नये छोकरे हो, दिमाग खराब हो गया है!

उन्होंने कहा, आप बातचीत मत करिए, जब घंटी बंध जाए कल तब मुलाकात करिए।

बूढ़े खूब हंसे बैठ कर कि लड़कों का दिमाग खराब हो गया! लड़के हमेशा इस तरह की बातें करते हैं। कहीं घंटी बंधी है?

लेकिन दूसरे दिन बिल्ली के गले में घंटी बंध गई। बूढ़े बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि यह क्या हुआ? कैसे घंटी बंधी? उन लड़कों से पूछा।

उन्होंने कहा, इसमें कोई बात ही नहीं है, इतनी साधारण सी बात है। उन दोनों छोकरों का--चूहों के छोकरों का--एक दवाई की दुकान में आना-जाना था। एक नींद की गोली ले आए, बस इतना ही राज था। और जहां बिल्ली दूध पीती थी वहां डाल दी। बिल्ली बेहोश हो गई। उन्होंने घंटी बांध दी।

लेकिन हजारों साल से चूहे सोचते थे कि घंटी कैसे बांधी जाए? और बूढ़े चूहे कहते थे, घंटी बांधी ही नहीं जा सकती।

ऐसी कोई घंटी नहीं है जो न बांधी जा सकती हो। और ऐसा कुछ भी नहीं है जो न बदला जा सकता हो। और ऐसा कुछ भी नहीं है जो न हो सकता हो। लेकिन जिस देश के प्राणों ने ऐसा तय कर रखा हो कि पुराने के सिवाय नया कुछ होता ही नहीं, उस देश की पूरी आत्मा सिकुड़ जाती है। और उस देश की पूरी आत्मा शक्ति खो देती है, सामर्थ्य खो देती है, सपना खो देती है। और फिर धीरे-धीरे हम आदी हो जाते हैं--जो है, वही है, इससे अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता। यह इतने जोर से बैठ गया है हमारे मन में कि अगर यह न तोड़ दिया जाए, तो इस देश में कोई भी गति संभव नहीं होगी।

इसे तोड़ा जाना जरूरी है। इसे सब तरफ से तोड़ा जाना जरूरी है। और जितनी कोशिश की जा सके इसे तोड़ने के लिए, जितने तर्क दिए जा सकें, जितना विचार किया जा सके, उतना ही सौभाग्य का सिद्ध होगा।

दो-तीन बातें इस संबंध में कहूंगा और अपनी बात पूरी करूंगा।

एक बात जो पुराना निरंतर कहता है पुराने के पक्ष में, उसे समझ लेना चाहिए। वह यह कहता है कि अतीत में हो चुका है स्वर्णयुग। गोल्डन एज जो है, वह हो चुकी। स्वर्णयुग हो चुका पहले, अब तो हम पतन कर रहे हैं। पंचम-काल चल रहा है, कलियुग चल रहा है। न मालूम और कितनी बातें वह कहता है। वह कहता हैः आगे? आगे तो पतन है, अंधकार है, महाप्रलय है। पीछे, पीछे सतयुग बीत चुका। राम-राज्य बीत चुका। पीछे हो चुका जो होना था श्रेष्ठ। ऊंचाइयां हमने छू लीं, अब आगे तो पतन के गड्ढे ही हैं।

हिंदुस्तान हजारों साल से यह बात कह रहा है। हिंदुस्तान के मन ने यह अंगीकार कर लिया। और जब कोई यह अंगीकार कर ले कि आगे अंधेरा है, गड्ढा है, प्रलय है, तो फिर धीरे-धीरे-धीरे-धीरे गड्ढा पैदा हो जाएगा, अंधकार भी हो जाएगा, अंधेरा भी हो जाएगा। और जब अंधेरा आएगा, गड्ढा आएगा, तो वह आदमी कहेगा कि देखो, ऋषि-मुनियों ने जो कहा था, कितना ठीक कहा था!

वह ऋषि-मुनियों के कहने की वजह से, उनकी भविष्यवाणी की वजह से नहीं आ रहा है अंधकार। भविष्यवाणी को स्वीकार किया गया, इससे आ रहा है। और वह आता चला जा रहा है। सारी दुनिया के लोग सोचते हैं--भविष्य में है स्वर्णयुग। आएगा, आगे उटोपिया है। और हम सोचते हैं, पीछे हो गया।

लेकिन वे पीछे का सोचने वाले बताते क्या हैं?

वे कहते हैं, पीछे हो गया। देखो, राम का जमाना कितना अदभुत था! बुद्ध का जमाना कितना अदभुत था! कृष्ण का जमाना कितना अदभुत था!

उनकी दलील बड़ी कमजोर है, बिल्कुल लचर है, उसमें कोई बुनियाद नहीं है।

अभी हम हैं सारे लोग। अभी हमारे बीच अदभुत आदमी थे गांधी। दो हजार साल बाद न मुझे कोई याद रखेगा, न आपको, लेकिन गांधी दो हजार साल बाद याद रहेंगे। और दो हजार साल बाद लोग कहेंगे कि गांधी के जमाने के लोग कितने अच्छे रहे होंगे! गांधी जिस जमाने में पैदा हुआ, उस जमाने के लोग कितने अच्छे रहे होंगे!

और उनकी बात बिल्कुल झूठ होगी। क्योंकि गांधी हमारे सबूत नहीं हैं, न हमारे प्रमाण हैं, न हमारे साक्षी हैं। वे हमारे विटनेस नहीं हैं। गांधी हमसे बिल्कुल उलटे हैं। गांधी अपवाद हैं, एक्सेप्शन हैं, वे नियम नहीं हैं। हम उनसे बिल्कुल उलटे हैं। लेकिन हम तो भूल जाएंगे, इतिहास के पन्नों पर कोई हमारे बाबत कुछ न

लिखेगा। और गांधी बच रहेंगे। और गांधी की तस्वीर बड़ी होती चली जाएगी, बड़ी होती चली जाएगी। और एक दिन लोग गांधी का युग कहेंगे हमारे युग को। और कहेंगे कि कितने अच्छे लोग रहे होंगे!

यही कहानी बार-बार होती रही है। राम याद रह गए हैं। राम के जमाने का न मैं याद हूं, न आप याद हैं। राम के जमाने के आम आदमी का कुछ भी पता नहीं। राम रह गए हैं। राम की तस्वीर बड़ी होती चली गई है। अब हम कहते हैं, राम का युग! अब हम कहते हैं, बुद्ध जब पैदा हुए! महावीर जहां हुए!

लेकिन ये बातें बेमानी हैं। ये सारे लोग अपवाद हैं। ये असली आदमी नहीं हैं। यह जो आदमी फिरता है, जीता है, ये वह नहीं हैं। ये मूर्तियां हैं। ये वे कुछ लोग हैं, जो जीवन भर चेष्टा करके ऊंचे उठते हैं। लेकिन ये सबके सबूत नहीं हैं।

और मेरा मानना है कि अगर इसी तरह के बहुत लोग होते गांधी जैसे, तो गांधी को कोई याद भी नहीं रखे। अगर राम जैसे बहुत लोग रहे हों, सारा युग अच्छा रहा हो, तो राम कभी याद नहीं रखे जा सकते। राम याद रहते इसलिए हैं कि चारों तरफ राम से ठीक उलटे लोग घेरे हुए हैं, नहीं तो राम याद नहीं रहेंगे। एक स्कूल का मास्टर है, वह भी इतनी सी बात जानता है। वह सफेद दीवाल पर नहीं लिखता सफेद खड़िया से। लिखे तो लिख जाएगा, लेकिन पढ़ा नहीं जा सकता। काले ब्लैक-बोर्ड पर लिखता है। क्यों? काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया उभर कर दिखाई पड़ती है, पढ़ा जाता है।

जब समाज का ब्लैक-बोर्ड होता है पूरा, तभी महापुरुष दिखाई पड़ते हैं, नहीं तो दिखाई नहीं पड़ते। जिस दिन सारा समाज अच्छा होगा, उस दिन महापुरुष तो पैदा होंगे, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेंगे। जिस देश का समाज जितना बुरा होता है, उस देश में उतने ही ज्यादा महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। इस फिक्र में मत पड़ना कि सारे भगवान यहीं क्यों अवतार लेते हैं? और कोई कारण नहीं है। और सारे महापुरुष और संत यहीं क्यों पैदा होते हैं? और कोई कारण नहीं है। वे दिखाई पड़ते हैं। सारे समाज का ब्लैक-बोर्ड बहुत काला है। उस पर एक आदमी भी सफेद हो जाता है तो बहुत चमकता है। हजारों साल तक चमकता रहता है।

नहीं, पीछे कुछ स्वर्णयुग नहीं हो गए हैं। कुछ अच्छे आदमी हुए हैं। स्वर्णयुग तो उस दिन होगा, जिस दिन सारे लोग इतने अच्छे आदमी होंगे। वह भविष्य में हो सकता है। वह पीछे नहीं है, वह पीछे नहीं हुआ है।

फिर उनकी शिक्षाएं भी उठा कर देखें। पुरानी से पुरानी किताब देखें। तो वह किताब भी यह नहीं कहती है कि आजकल के लोग अच्छे हैं। वह किताब कहती है, पहले के लोग अच्छे थे। पुरानी से पुरानी किताब यह कहती है, पहले के लोग अच्छे थे। छह हजार वर्ष पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे। तब जरा शक होता है कि ये पहले के लोग कब थे? ये थे भी कभी? या कुछ अच्छे लोगों की याद के आधार पर हमेशा पहले के लोग अच्छे दिखाई पड़ते हैं?

और भी कारण मालूम होते हैं। अगर हम महावीर की शिक्षाएं उठा कर देखें, तो महावीर क्या समझाते हैं सुबह से सांझ तक? सुबह से सांझ तक समझाते हैंः चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, दूसरे की स्त्री को मत भगाओ, हिंसा मत करो। अगर लोग अच्छे थे, तो महावीर का दिमाग खराब था, यह किसको समझा रहे हैं? बुद्ध भी यही समझाते हैं। क्राइस्ट भी यही समझाते हैं। दुनिया के सारे महापुरुष सुबह से शाम तक लेकर एक ही काम करते हैं--चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो, व्यभिचार मत करो। किसको समझाते हैं ये चौबीस घंटे ये बातें? अगर लोग अच्छे थे, तो समझाने की कोई जरूरत न थी। लेकिन लोग उलटे रहे होंगे। चोरों को ही समझाना पड़ता है--चोरी मत करो। बेईमानों को समझाना पड़ता है--बेईमानी मत करो। नहीं तो किसको समझाना पड़ेगा? हत्यारों को समझाना पड़ता है--हिंसा बुरी है, अहिंसा परम धर्म है। यह सिर्फ हिंसकों

को समझाना पड़ता है कि अहिंसा परम धर्म है। ये सारी शिक्षाएं बताती हैं कि समाज कैसे लोगों से गठित था! कैसे लोग थे!

वह जो लोग कहते हैं कि ताले नहीं लगते थे हमारे देश में, तो चोरी होती ही नहीं होगी। शक की बात है। क्योंकि जब ताले नहीं लगते हैं, तभी महावीर दिन-रात समझा रहे हैं, बुद्ध समझा रहे हैं कि चोरी मत करो। तो इससे यह पता चलता है कि ताले बनाना न आता होगा। और यह भी हो सकता है कि ताला बनाना भी आता हो, तो ताले में रखने योग्य कुछ न रहा होगा। यही दो बातें हो सकती हैं, तीसरी बात नहीं हो सकती। आखिर ताले में रखने को भी तो कुछ चाहिए न! ताला काहे पर लगाइएगा? ताला लगाने के लिए कुछ चाहिए न! देश इतना गरीब रहा है कि कहां ताला लगाओगे? किस चीज पर ताला लगाओगे? आज भी करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास ताला लगाने को कुछ भी तो नहीं है। तो उनके घर पर ताला न लगे, तो यह मत समझ लेना कि चोरी नहीं होती। चोरी के लिए भी तो कुछ चाहिए! चोरी किसकी होगी? लेकिन महावीर और बुद्ध की शिक्षाएं बताती हैं कि चोरी बराबर होती रही होगी। और या फिर यह भी हो सकता है कि ताला चोरी चला गया हो। आपने लगाया हो और कोई चोर ही ले गया हो। पीछे आने वाले आदमी ने देखा हो कि अरे ताला नहीं है, इस गांव में चोरी नहीं होती।

लेकिन आदमी का सबूत मिलता है इस बात से कि जो शिक्षाएं उसे दी गई हैं। हमारी सारी शिक्षाएं बताती हैं कि समाज अच्छा नहीं रहा है।

लेकिन समाज अच्छा हो सकता है। और तब होगा अच्छा, जब हम यह भ्रम छोड़ दें कि समाज अच्छा था। समाज अच्छा हो सकता है। लेकिन समाज अच्छा अपने आप नहीं हो जाता है। समाज अगर बुरा है, तो हमारे कारण है। और समाज अगर अच्छा होगा तो हमारे कारण होगा। हम कुछ करेंगे तो होगा।

लेकिन भारत मानता है कि हमारे किए तो कुछ होता नहीं, सब भगवान करता है। इस बात ने जितना हमें नुकसान पहुंचाया, जितनी पाय.जनस है यह बात कि सब भगवान करता है, उतनी जहरीली और कोई बात नहीं हो सकती। अच्छा था कि हिंदुस्तान की नस-नस में जहर का टीका लगा दो और सब मर जाएं, मगर इस तरह की बकवास मत सिखाओ कि सब भगवान करता है। सबको जहर दे दो, वह अच्छा है, लेकिन इस तरह का मानसिक जहर मत दो। क्योंकि जिस आदमी को, जिस समाज को यह ख्याल हो जाता है--सब भगवान करता है, वह समाज सब कुछ करना बंद कर देता है।

और ध्यान रहे, जीवन की जो विकृति है, उसको करने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता, वह अपने आप आ जाती है। नीचे उतरना हो, तो आदमी अपने आप चला जाता है। ऊपर जाना हो, तो कुछ करना पड़ता है। और जो समाज यह मान ले कि सब भगवान करता है, वह नीचे से नीचे चला जाएगा। क्योंकि नीचे जाने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। ऊपर जाने के लिए खुद कुछ करना पड़ता है। अगर यह भी हम मान लें कि सब भगवान करता है और हमारा नीचे जाना रुक जाए, तो भी ठीक है। लेकिन नीचे जाना नहीं रुकता। नीचे जाना एकदम अपने आप होता चला जाता है। एक ग्रेविटेशन है नीचे का। एक पत्थर को हम ऊपर की तरफ फेंकें। फेंकने के लिए ताकत लगानी पड़ती है। पत्थर को लौटने के लिए कोई ताकत नहीं लगती, जमीन खींच लेती है।

जिंदगी का नीचे की तरफ एक गुरुत्वाकर्षण है। तो जो समाज यह मान लेता है कि सब भगवान करता है, वह ऊपर उठना बंद कर देता है। ऊपर उठने के लिए कुछ करना जरूरी था। और नीचे गिरना जारी रहता है। और जब कोई समाज ऊपर नहीं उठता, तो नीचे गिरता ही चला जाता है। और जितना नीचे गिरता चला जाता

है, उतना वह काहिलपन की, नपुंसकता की, इंपोटेंस की बातें पकड़ने लगता है--कि ठीक है, यह तो भाग्य है, यह तो कर्म है, यह तो यह है, यह तो वह है--और नीचे गिरता चला जाता है।

सारा मुल्क एक अंधेरे घर की तरह हो गया है, एक पागलखाने की तरह! इसको बदलना है या नहीं बदलना है? इसे नया करना है कि नहीं करना है? और कौन और कैसे इसे नया करे? तो मैंने तीन-चार बातें कहीं, उन पर सोचना।

एकः पुराने का मोह जब तक है, तब तक नये का जन्म नहीं हो सकता। पुराने को गिराना पड़ेगा, अगर नये को बनाना है। विध्वंस की हिम्मत चाहिए, अगर सृजन करना हो। केवल वे ही निर्माण करते हैं जो मिटाने की ताकत भी जुटा लेते हैं।

और मैंने यह कहा कि सोचना होगा कि हम अतीत में ही मानते चले जाएं अपने स्वर्णयुग को या भविष्य में बनाएं स्वर्णयुग को? अतीत में स्वर्णयुग को मानने वाली कौम पतन के रास्ते पर जाती है। भविष्य में स्वर्णयुग को मानने वाली कौम विकास करना शुरू करती है।

और तीसरी बात मैंने कही कि क्या हम टेक्नॉलॉजी और विज्ञान के विकास में आगे बढ़ेंगे? या दकियानूसी और पुराणपंथी बातों में पड़ कर देश के भाग्य को उन्हीं हाथों में छोड़ देंगे अंधेरे, जिनमें देश हजारों साल से रहा है?

और चौथी बात मैंने कही कि अगर विज्ञान को लाना है, तो आधुनिक, मॉडर्न होने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी। पश्चिम-वश्चिम की बात छोड़ देनी पड़ेगी। न कोई पूरब है, न कोई पश्चिम है। नया है और पुराना है। यह डिवीजन गलत है पूरब और पश्चिम का। असली डिवीजन है पुराने और नये का। पुराने के खिलाफ नये की लड़ाई है।

लेकिन पुराना चालाक है। और वह यह कहता है कि नया? अच्छा तो तुम पश्चिमी होना चाहते हो? पश्चिमी नहीं होना है, हमको अपना भारतीय रहना है।

भारतीय तुम बहुत दिन से हो, बहुत दुख उठा रहे हो। और भारतीय होने का मतलब पुराना होना नहीं होता, मरा हुआ होना नहीं होता। हम नये होकर भी भारतीय हो सकते हैं। सच तो यह है कि नये होकर ही हो सकते हैं। क्योंकि पुराना होकर सिर्फ एक दीनता की लंबी कहानी है, दुख और दारिद्र्य की।

और अंतिम बातः यह जो मैंने कहा, ये जो बातें मैंने कहीं, मेरा कोई आग्रह नहीं है कभी भी कि जो मैं कहूं उसे मान लेना। क्योंकि यही तो पुरानी उपद्रव की जड़ रही है अब तक--कि आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं वह मान लो। क्यों? क्योंकि मैं तीर्थंकर हूं, मैं महात्मा हूं, मैं गुरु हूं। ऐसा ऊपर से चाहे न भी कहे, लेकिन सारा आयोजन ऐसा करता है कि मान लो कि मैं जानता हूं।

यही खतरनाक सिद्ध हुआ है। अब किसी की मत मानना। अब इस मुल्क को गुरु की जरूरत नहीं है। अब यह मुल्क गुरु-वुरु की बकवास से मुक्त होना चाहिए। अब तो एक-एक आदमी को सोचना पड़ेगा। जब पूरा मुल्क सोचेगा, तब वह प्रतिभा प्रकट होगी, वह शक्ति प्रकट होगी, जो जीवन की समस्याओं को हल कर सकेगी।

यहां कुछ लोग सोचते हैं, सारे लोग चुपचाप मानते हैं। इसीलिए लिथार्जी, आलस्य पैदा हो गया है, तमस पैदा हो गया है। हम पत्थरों की तरह पड़े रह गए हैं। अंकुरों की तरह ऊपर नहीं बढ़ते हैं।

तो मैंने जो कहा, सोचना। इससे ज्यादा मेरा कोई आग्रह नहीं है। इसलिए मुझे बड़ी हैरानी होती है! जब मुझे चारों तरफ से गालियां पड़नी शुरू होती हैं, तो मुझे हैरानी होती है। क्योंकि मैंने किसी से कहा नहीं कि मेरी बात मान लो। मैंने यह भी नहीं कहा कि मेरी बात कोई सत्य, चरम सत्य है, कि उससे भिन्न कुछ नहीं हो

सकता। मैंने तो सिर्फ इतना निवेदन किया कि मेरी बात सोचना। अगर ठीक लगे, ठीक; गैर-ठीक लगे, फेंक देना। और अगर अपने सोचने से ठीक लग जाए मेरी बात, तो फिर वह मेरी नहीं रह गई, वह आपकी हो गई। जो खुद के विचार से निकलता है वह स्वयं का हो जाता है। और स्वयं का सत्य ही एकमात्र सत्य है। और स्वयं का सत्य ही व्यक्ति को स्वतंत्र करता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इस तकलीफ में और मुसीबत में, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

प्राचीन से नवीन

ओशो, आपकी स्पीच से, क्या करना चाहिए, ऐसा कुछ ज्यादा समझ में आता है। मगर कैसे करना चाहिए? और खासतौर से इंडिविजुअल बेस पर नहीं, मगर एज ए कम्युनिटी और एज ए सोसाइटी क्या करना चाहिए, वह जरा ज्यादा डिटेल में आप बताएं।

वह तो मैं दुबारा आऊं और दिन या दो दिन रुकूं, तो आसान पड़ेगा।

लेकिन अभी तो मुल्क के सामने करने की एक ही बात है कि कुछ भी करने की जल्दी नहीं करनी चाहिए और विचार की एक हवा फैलानी चाहिए। करने की बहुत जल्दी नहीं करनी चाहिए अभी। क्योंकि जब तक मुल्क के पास ठीक विचार न हो, हम जो भी करने की कोशिश करेंगे, उससे गलत और उपद्रव ही होने का डर ज्यादा है। तो मुल्क के पास ठीक-ठीक माइंड नहीं है, इसलिए एक्शन की बहुत जल्दी गड्ढे में ले जाने वाली है और कहीं नहीं ले जाने वाली है।

तो मेरा कहना है, अभी एक पांच-दस साल तो मुल्क को एक माइंड क्रिएट करने की कोशिश करनी चाहिए। फिर उस माइंड के पीछे एक्शन तो आता है, जैसे छाया आपके पीछे आती है। एक्शन बहुत कीमत का है ही नहीं। एक बार स्पष्ट दिमाग हो मुल्क के पास, तो क्या करना है, वह तो बहुत आसानी से आ जाता है; कैसे करना है, वह भी बहुत आसानी से आ जाता है। लेकिन करने वाला कौन है, कैसा है, यह बहुत मुश्किल बात हो गई है! तो हमारे पास जैसा दिमाग है, उस दिमाग को लेकर--"क्या करना है? कैसे करना है?"--चिल्लाते रहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

तो मेरी जो चेष्टा है वह तो यह है कि मेंटल रेवोल्यूशन कैसे हो जाए! और इसकी हम चिंता ही न करें कि उस मेंटल रेवोल्यूशन को किस ढांचे में ढालें--अभी। वह जल्दी हमने की तो वह बात नहीं होने वाली है। अभी तो बहुत स्वतंत्र मन से पूरा मुल्क सोचे। और हम सोचने के लिए मुल्क को मजबूर कर सकें--सोचने के लिए! सब तरफ से दबाव डाल सकें कि उसे सोचना ही पड़े, इसकी पूरी की पूरी व्यवस्था करनी चाहिए।

अब जैसे युवकों के संगठन हैं। गांव में एक आदमी ऐसा बोलते हुए नहीं जाना चाहिए कि जिसको आप पूरी तरह से सोचने को मजबूर न कर दें। गांव में कोई भी बोलने आता है, तो हजार प्रश्न होने चाहिए। और यह मुल्क के सामने स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अब हम बकवास सुनने को राजी नहीं होंगे। बोलना है तो बहुत सोच कर आओ और एक-एक चीज का जवाब लेकर आओ, नहीं तो नहीं सुनेंगे।

तो मुल्क में कोई भी कुछ बोल रहा है, वह कुछ भी कह रहा है और सारे लोग सुन रहे हैं बैठे हुए। तो हिंदुस्तान के युवक अगर इतना भी कर दें कि हिंदुस्तान के व्यर्थ बोलने वालों का मुंह बंद कर दें, और हर बोलने वाले को सोचने के लिए मजबूर कर दें, और हर सभा को एक डिसकशन में परिवर्तित कर दें। एक दो साल तक मुल्क में कोई चीज अनक्वेश्चंड न रह जाए। और हर चीज पर प्रश्न हो, हर चीज पर संदेह हो। और ऐसी एक भी बात न चल पाए मुल्क में, जिस पर कि डाउट नहीं किया गया और लड़ाई नहीं लड़ी गई। बस दो साल इतना भी अगर मुल्क के दिमाग में बात आ जाए, तो हम दो साल में बहुत साफ नतीजों पर पहुंच सकते हैं, कोई कठिनाई नहीं है।

लेकिन वही नहीं हो रहा है, वही नहीं हो पा रहा है। चिंतन जैसी चीज ही नहीं है। और जिनको हम समझते हैं चिंतक, वे सब पिटी-पिटाई बातें दोहरा रहे हैं, जिसमें कुछ चिंतन नहीं है जरा भी। और सारे युवक सुन रहे हैं, बड़ी हैरानी की बात यह है! कोई विरोध भी नहीं है उसका। व्यक्तिगत रूप से भला कोई कुछ विरोध कर रहा हो, सोच रहा हो, लेकिन सामूहिक तल पर चिंतना नहीं है।

तो कैसे एक डायलाग पैदा हो जाए पूरे मुल्क में!

हजारों चीजें हैं जो अनक्वेश्चंड चल रही हैं हजारों साल से, जिन पर कोई सवाल ही नहीं उठाता। और कई दफे ऐसा होता है कि अगर सवाल न उठाया जाए, तो हमें पता ही नहीं रहता कि यह भी सवाल उठा सकते हैं।

अरस्तू ने अपनी किताब में लिखा हुआ है कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं पुरुषों से। अरस्तू जैसे बुद्धिमान आदमी ने! और अरस्तू के एक हजार साल बाद तक किसी आदमी ने क्वेश्चन नहीं किया इस बात पर! और इतनी सरल सी बात है कि स्त्री के दांत गिने जा सकते हैं। लेकिन चूंकि अरस्तू के पहले से हजारों साल से यह बात यूनान में चल रही थी कि स्त्री के दांत कम होते हैं, यह मान ली गई थी! इसकी न किसी स्त्री ने फिक्र की, न किसी पुरुष ने फिक्र की! अरस्तू की खुद दो औरतें थीं--एक भी नहीं। वह किसी के भी दांत गिन सकता था बैठा कर कि दांत गिन लूं। मगर यह कोई सवाल नहीं था।

एक हजार साल बाद जब पहली दफा किसी आदमी ने औरत के दांत गिने और उसने कहा कि यह तो बड़ी गड़बड़ बात है, दांत बराबर होते हैं। तो कोई मानने को राजी नहीं हुआ कि यह हो कैसे सकता है? क्योंकि हजारों साल से अगर दांत बराबर थे, तो कोई तो गिनता! कोई तो पूछता!

इस मुल्क में तो ऐसी हजारों बातें बिना पूछे चली आ रही हैं, कि हम उनको सुनते हुए पैदा होते हैं, वे हमारे खून में मिल जाती हैं। सुनते हुए मर जाते हैं। हम कभी पूछते ही नहीं! मुल्क ने पूछना ही बंद कर दिया है।

तो मेरी तो अभी सारी कोशिश यह है कि मुल्क में एक प्रश्न और एक डायलाग... और सब मसलों पर, छोटे से लेकर बड़े मसले तक। हम किसी चीज को अंधे होकर विश्वास करने को राजी न हों। बड़ी तकलीफ होगी पहले, क्योंकि सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। और जो भी निश्चित हो गया है, वह सब डांवाडोल हो जाएगा। लेकिन उसको डांवाडोल कर देना जरूरी है। और इस क्वेस्ट से, इस चिंतना और विचार से जो हवा पैदा होगी, तो एक नया माइंड मुल्क में पैदा होगा जो सोच-विचारशील होगा। और उस माइंड से फिर एक्शन करवाना बहुत कठिन नहीं है। एक दफा यह साफ हो जाए कि क्या करना है, कैसे करना है। लेकिन यह साफ उस माइंड को होगा जो पूछता हो, सोचता हो, खोजता हो। न हम सोचते हैं, न पूछते हैं, न खोजते हैं।

तो मेरा कोई बहुत ब्योरे में काम करने पर, अभी तो मेरा कोई जोर नहीं है। अभी तो मेरा जोर यह है कि मैं आपको किसी तरह हिला दूं और सोचने के लिए मजबूर कर दूं। और अभी इसकी भी बहुत फिक्र नहीं है कि मैं आपको क्या सोचने की दिशा में ले जाऊं। क्योंकि जैसे ही मैंने यह फिक्र की कि आपको क्या सोचने की दिशा में ले जाऊं, वैसे ही मैं भी नहीं चाहूंगा कि आप पूरी तरह सोचें। फिर मैं यही चाहूंगा कि जो मैं चाहता हूं वही आप सोचें। और फिर बंधन शुरू हो जाता है। तो अगर मेरा कोई आइडिया हो एक कि इस तरफ सारे लोगों को ले जाना है, तो फिर मैं भी नहीं चाहूंगा कि ये सब लोग सोचें। फिर मैं यही चाहूंगा, इतना सोचें जितने से वे मेरे साथ चलने को राजी हो जाएं। और इतना न सोचें कि मुझ पर संदेह करने लगें।

इसलिए दुनिया में जो आइडियालॉजिस्ट होते हैं, वे कभी चिंतन को गति नहीं दे पाते। और जो इज्म के मानने वाले होते हैं, वादी होते हैं, वे भी कभी विचार को गति नहीं देते। क्योंकि उनका मूल आग्रह भीतर यह

होता है कि उतना सोचो जितने से तुम मुझसे राजी हो जाओ, उससे ज्यादा मत सोचना। कहीं तुम मुझ पर ही न संदेह करने लगो।

तो मेरा कहना है कि न मेरा कोई इज्म है, न कोई विचार है, न कोई विचारधारा है। मेरी एक ही चिंतना है कि विचार कैसे पैदा हो? कोई विचारधारा का मुझे कोई ख्याल नहीं है। यह पैदा करने में युवक और युवकों के सारे संगठन बड़े काम के साबित हो सकते हैं। तो तीव्र डिसकशन पूरे मुल्क में हो जाना चाहिए।

अभी मैं सेक्स पर बोला। तो मुझे हजारों पत्र आए। और वे पत्र ये थे कि आपसे हम चाहे राजी हों या न राजी हों, लेकिन हम इसके लिए आपको धन्यवाद देते हैं कि आपने इस विषय पर चर्चा शुरू की।

लेकिन वह भी चलती नहीं बहुत, जितने जोर से चलनी चाहिए। मेरे खिलाफ जिनको लिखना है, वे तो जोर से लिख देते हैं। मेरे पक्ष में सैकड़ों सोचने वाले लोग हैं, वे कुछ लिखते ही नहीं! वे सोचते हैं कि ठीक है, अच्छा लगा, बात खतम हो गई। तो चलेगा नहीं। मैं यह नहीं कहता कि मेरे पक्ष में लिखा जाए, मैं यह कहता हूं कि सब तरफ से लिखा जाए। और इतने जोर से विवाद चलाए जाएं कि कोई एक मसला पूरे मुल्क में मंथन का कारण बन जाए। वह नहीं बनता है। कोई मसला नहीं बनता है।

और हम किसी मसले को उठाना भी नहीं चाहते और डरते भी हैं, क्योंकि उठाया मसला तो पता नहीं क्या नतीजे निकलें उसके विवाद के। और हिंदुस्तान के नेता तो बिल्कुल नहीं चाहते कि कोई विवाद मुल्क में हो, कोई चिंतना हो, कुछ विचार हो, वे कुछ नहीं चाहते। हिंदुस्तान के धर्मगुरु भी नहीं चाहते। हिंदुस्तान का कोई भी वेस्टेड इंट्रेस्ट यह नहीं चाहता कि कोई भी क्वेश्चनिंग शुरू हो जाए। न बाप चाहता है, न स्कूल का शिक्षक चाहता है, न वाइसचांसलर चाहता है, कोई नहीं चाहता। सब वेस्टेड इंट्रेस्ट यह चाहते हैं कि जो चल रहा है वह ठीक है, "स्टेटस को" जारी रहना चाहिए। और वह तभी जारी रह सकता है, जब आप कुछ न पूछो, चुपचाप मानते चले जाओ। उन सबकी चेष्टा यह है। और उन सबकी चेष्टा बड़ी घातक हो गई है।

इधर तो मैं यह कहता हूं--जैसे साक्रेटीज ने यूनान और एथेंस की गली-गली, कूचे-कूचे में क्वेश्चनिंग खड़ी कर दी। सड़क पर निकलना मुश्किल कर दिया लोगों का। कि अगर आप जा रहे हो और साक्रेटीज दिख गया, तो आप दूसरी गली से निकल जाओगे। क्योंकि वह मिल गया तो वह कुछ न कुछ पूछेगा और भीड़ खड़ी हो जाएगी। और आपको ऐसी स्थिति में डाल देगा कि आप कोई जवाब न दे सकोगे। उसी से एथेंस गुस्से से भर गया उस आदमी पर।

इस वक्त मुल्क को सैकड़ों साक्रेटीज की जरूरत है। वे कुछ न करें, वे गांव-गांव में क्वेश्चनिंग खड़ी कर दें और ऐसी हालत पैदा कर दें कि कोई भी निस्संदिग्ध भाव से खड़े होकर न कह सके कि यह सच है। और इस तरह न कह सके कि हमें पता है, हम जानते हैं, और तुम्हें मानने की जरूरत है।

तो इससे बिल्कुल नई लीडरशिप पैदा होगी। और पुरानी लीडरशिप को और किसी तरह से बदला नहीं जा सकता। क्योंकि पुरानी लीडरशिप को अगर बदलते हो आप, तो या तो पुरानी लीडरशिप के हथकंडे ही उपयोग करो। तब आप बदलते में वही हो जाते हो जिसको आपने बदला है।

इस वक्त यही हो रहा है, कि अगर कांग्रेस की लीडरशिप को बदलती है कोई दूसरी पार्टी, तो उन्हीं सारे हथकंडों का उपयोग करती है जो कांग्रेस कर रही है। और उनको बदलते-बदलते वह उसी शक्ल में हो जाती है जो कि कांग्रेस थी, बल्कि उससे बदतर। क्योंकि उससे भी ज्यादा उसको हथकंडे उपयोग करना पड़ते हैं। अगर कांग्रेस लड़ रही है और वह भड़का रही है मुसलमान को और हिंदू को वोट करवाने के लिए या भंगी को और चमार को कि इसको वोट करो--जातिवाद का उपयोग कर रही है, तो विरोधी भी वही उपयोग कर रहा है।

अगर वह पैसे बांट रही है, तो विरोधी भी पैसे बांट रहा है। और आखिर में उससे लड़ते-लड़ते आप वही के वही हो जाते हो।

सब क्षेत्रों में यह हो रहा है कि पुरानी लीडरशिप को किसी भी क्षेत्र से बदलने में नई लीडरशिप जो लड़ाई लेती है, वह आखिर में वही की वही हो जाती है।

इसलिए मेरा कहना है, पुराने लीडर को बदलने की फिक्र ही मत करो। न पुरानी सिस्टम को बदलने की फिक्र करो। पुरानी सिस्टम और पुराने लीडर को जिस माइंड से सहारा मिलता है, तुम उस माइंड से सीधी लड़ाई लो और उसकी जड़ें हिला दो! और तुम पाओगे कि एक दस-पंद्रह साल की तीव्र अराजकता चित्त में पैदा हो जाए मुल्क के, तो इस अपहीवल में जो लोग ऊपर आ जाएंगे, वे बिल्कुल और तरह के लोग होंगे। और उनसे एक्शन भी आएगा, उनसे कुछ काम भी होगा। नहीं तो नहीं होने वाला।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह, सरोजिनी जी, आपको शायद ख्याल न हो कि रूस में लेनिन और ट्राटस्की, इनके पहले निहिलिस्टों का एक बड़ा आंदोलन चला। और निहिलिस्टों ने और कुछ नहीं किया, क्योंकि निहिलिस्ट का मानना ही यह है कि वह एक तरह का अराजकवादी है। वह कहता है, हम यह भी नहीं मानते और वह भी नहीं मानते; हम कुछ नहीं मानते हैं। हम कुछ मानते ही नहीं!

तो निहिलिस्टों का उन्नीस सौ से लेकर एक तीव्र आंदोलन चला, और पंद्रह-बीस साल में उसने पूरे मुल्क के चित्त को पुरानी जड़ों से शिथिल कर दिया। और उसके पीछे नई लीडरशिप आ गई और उसकी पूरी भूमिका जो थी वह निहिलिस्टों ने खड़ी की।

हिंदुस्तान में कोई समाजवादी, कोई साम्यवादी आंदोलन कभी सफल नहीं हो सकता, क्योंकि हिंदुस्तान के पास निहिलिस्टों जैसा कोई आंदोलन नहीं है जो पुरानी जड़ों को हिला दे। और जब पुरानी जड़ें हिल जाती हैं, तो वृक्ष नई जड़ों की मांग करता है, नहीं तो वह मांग ही नहीं करता। इसलिए मेरी समझ में यहां क्या हो रहा है कि अगर यहां का समाजवादी भी है, तो भी हथकंडे उसके बिल्कुल पूंजीवादी हैं। यहां कुछ भी कोई करे तो वह करेगा वही जो हो रहा है। और उससे कोई हल नहीं होता है।

तो इधर मैं चिंता ही नहीं करता हूं कि क्या करना अभी और कैसे करना। अभी मैं एक ही चिंता करता हूं कि मुल्क के चित्त को पूरी तरह अस्तव्यस्त कैसे कर देना। सब मसलों पर संदेह कैसे पैदा हो जाए। सब सवालों पर हम कैसे पूछने लगें फिर से कि ठीक है, पुराने हल हल नहीं हैं। अब हम क्या, कौन सा हल है? अभी मैं हल नहीं देने की कोई बात करता हूं। अभी मैं कहता हूं कि इतना ही पूछना खड़ा हो जाए मुल्क के सामने, तो इसी चिंतना से हल खोजने वाले भी आ जाएंगे, नया चिंतन देने वाले लोग भी आ जाएंगे और नई लीडरशिप, नया नेतृत्व--धर्म में, समाज में, राजनीति में--सब तरफ खड़ा हो जाएगा। और अगर हमने जल्दी की...

और जल्दी हम क्यों करते हैं, वह हमें कभी ख्याल नहीं आता। हम अक्सर... मुझे रोज लोग पूछते हैं कि आप यह कह देते हैं, हम समझते हैं, लेकिन हम करें क्या? और क्या आपकी योजना है, वह पूरी हमें बताइए, तो वह हम करें।

वे इतनी जल्दी क्यों करते हैं? उसका कारण है। जब मैं उनको हिला देता हूं तो उनकी पुरानी योजना और दृष्टि तो हिल जाती है, तो वे कहते हैं, जल्दी से हमें कोई नई योजना बताओ तो हम उसको पकड़ लें।

लेकिन वह जो पकड़ने वाला चित्त है, वह कायम रहेगा। मैं कहता हूं कि पकड़ने की इतनी जल्दी मत करो, तुम कुछ दिन हिले हुए भी तो रह जाओ। मत फिक्र करो पकड़ने की कि नया क्या होगा, या क्या हम करेंगे। सोचने को ही राजी हो जाओ। मेरा ख्याल समझ में आता है न?

तो इधर मेरी तो एक तरह की निगेटिव दृष्टि है अभी। मानता हूं मैं कि उससे पाजिटिविटी पैदा होगी। लेकिन उसकी मैं बहुत चिंता नहीं करता हूं। क्योंकि वह कोई दस-पंद्रह साल तो मुल्क को इतने जोर से हिलाने की सब तरफ से जरूरत है। और ऐसे मित्र चाहिए जो सब तरफ चोट कर सकें और गांव-गांव में ऐसी हालत पैदा कर दें कि पूरा गांव संदिग्ध हो जाए कि अब कुछ मामला तय नहीं रहा। हमने अब तक जो तय माना था, वह तय नहीं है। जो हम अब तक सत्य समझे थे, वह सत्य नहीं है। जो किताब हमने किताब मानी थी, वह किताब नहीं है। जिसको गुरु कहा था, वह गुरु नहीं है। तो इस चिंतना से अपने आप ही वह सब पैदा होगा।

यह जो पश्चिम में दो-तीन सौ वर्षों में इतना विज्ञान पैदा हो सका, उसके पीछे थोड़े से लोगों का हाथ था, जो वैज्ञानिक नहीं थे। जिन लोगों ने फ्रेंच क्रांति में, एनसाइक्लोपेडिट्स जो थे थोड़े से, जिन्होंने बहुत संदेह पैदा किया था सारी चीजों पर, वे मौलिक रूप से जन्मदाता बने। एक दफा संदेह पैदा हो गया तो कई लोग संदेह करने लगे। और जब संदेह पैदा होता है तो कई चीजों पर हो जाता है। जब एक दफा यह संदेह पैदा हो गया, किसी भी चीज के संबंध में...

गैलीलियो को पकड़ कर जो चर्च ने कहा, चर्च ने यह कहा गैलीलियो से, प्राइवेट में, चर्च के अधिकारियों ने प्राइवेट में गैलीलियो से यह कहा कि तुम्हारी बात ठीक भी हो सकती है, लेकिन हम उसे मानने को इसलिए राजी नहीं हैं कि बाइबिल की अगर एक बात गलत हो गई, तो बाकी सब चीजों पर संदेह पैदा हो जाएगा। गैलीलियो से प्राइवेट में यह कहा कि तुम्हारी बात ठीक भी हो सकती है, लेकिन हम उसे मानने को सिर्फ इसलिए राजी नहीं हो सकते हैं कि अगर बाइबिल की एक बात गलत होती है, तो लोगों को शक पैदा हो जाएगा कि दूसरी भी गलत हो सकती है। और फिर उसको सम्हालना मुश्किल हो जाएगा। तो गैलीलियो को जबरदस्ती बुलाया अदालत में और कहा कि लिखित माफी मांगो!

बूढ़ा आदमी था। उसने लिखित माफी मांगी। लेकिन उसने जो लिखा है वह बहुत अदभुत है! उसने लिखा कि तुम कहते हो कि पृथ्वी का चक्कर सूरज लगाता है, तो मैं माने लेता हूं और मैं क्षमा मांगता हूं कि मैंने ऐसा कहा कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। लेकिन मेरे क्षमा मांगने से कुछ भी नहीं होता; पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता हूं, मेरा कोई वश नहीं है। यह मेरा कसूर ही नहीं है कि पृथ्वी लगाती है। मैंने कहा, उसके लिए मैं क्षमा मांगे लेता हूं। लेकिन लगाती पृथ्वी सूरज का चक्कर है और सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता।

पर गैलीलियो की इस बात ने इतने संदेह उठा दिए कि सब गड़बड़ हो गया पूरा का पूरा। यह एक आदमी पूरी बाइबिल का भवन गिरा गया नीचे से ऊपर तक। और फिर जब लोग कहने लगे, एक शक हो सकता है, तो दूसरा शक भी हो सकता है।

हिंदुस्तान के साथ कठिनाई यह है कि तुम यह जान कर हैरान होओगे कि हिंदुस्तान के युवकों ने गीता में एक संदेह नहीं उठाया है तीन हजार साल से! यह मुल्क मरेगा नहीं तो क्या होगा? वेद में एक संदेह नहीं उठाया है हिंदुस्तान के युवकों ने। महावीर और बुद्ध में एक शक पैदा नहीं किया है कि यह आदमी गलत भी हो सकता है इस बात में! यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है न! इतनी आश्चर्यजनक बात है कि तीन हजार साल की संस्कृति में हम युवक एक संदेह नहीं उठा सकते?

तो दो ही अर्थ हो सकते हैंः या तो सर्वज्ञ हो चुके, जो सब सही कह गए। या फिर दूसरा यह हो सकता है कि हम यह भूल ही गए कि प्रश्न उठाना भी एक कला है। और वह नहीं उठाया जाए तो मुश्किल हो जाती है। और जब तक हिंदुस्तान के युवक गीता में, कृष्ण में और बुद्ध में और महावीर में और राम में और गांधी में, इन सब में संदेह नहीं उठाएंगे...

और मैं तुमसे यह कहता हूं कि अगर एक-एक संदेह भी एक-एक में उठा दो, तो नींव गिर जाएगी। एक-एक संदेह! कोई ऐसा नहीं कि तुम पूरे संदेह को... बस एक तुम उठाओ; दूसरा दूसरा उठाएगा। और दस साल में तुम देखोगे कि हजारों संदेह उठ गए, जो कभी नहीं उठ रहे थे। बस एक सिलसिला चाहिए। और एक दफा पता चल जाए कि कृष्ण एक जगह पर गलती कर गए, तो हमें यह तो हो जाता है न कि कृष्ण और गलती भी कर सकते हैं! तो कोई ठेका नहीं ले लिया है किसी ने ठीक होने का।

तो मेरी तो अभी कोशिश यह है। और अकेला आदमी और कर भी नहीं सकता कुछ। क्योंकि मैं संगठन में विश्वास नहीं करता। क्योंकि मेरा मानना है कि सब संगठन विचार को रोकने वाले होते हैं। संप्रदाय में विश्वास नहीं करता, क्योंकि संप्रदाय रोकने वाले होते हैं। तो मेरा विश्वास तो व्यक्ति की चिंतना, साहस और हिम्मत में है। तो उसको कैसे जगाना, उस कोशिश में लगा हूं। उस जागने से कुछ लोगों को लगेगा कि कुछ करने योग्य आ गया, वे कुछ करेंगे और मुझसे पूछेंगे, तो मैं हमेशा राजी हूं उनसे कि मुझे क्या सूझता है, वह मैं कहूं।

लेकिन वे लोग तो आ जाएं, तभी कुछ कहना ठीक है। और नहीं तो एक नया वर्ग पैदा हो जाएगा। अगर मैं कोई योजना देता हूं कि यह करना है, तो मुझमें विश्वास करने वाला एक छोटा सा वर्ग खड़ा हो जाएगा। और वह मुझसे कहने लगेगा कि अब आप ये शक और संदेह की बातें मत करिए, क्योंकि हमारा सब काम गड़बड़ होता है।

तो अभी मैं उसकी बात ही नहीं करता। अभी तो मैं मुझ पर भी संदेह करने की पूरी चेष्टा करवाता हूं। पूरी चेष्टा करवाता हूं कि मैं भी संदिग्ध हो जाऊं, मुझ पर भी सोचो। और अब हिंदुस्तान में कोई आदमी असंदिग्ध न हो, सब आदमी संदिग्ध हों और सब विचार संदिग्ध हों। ताकि हम रोज सोच सकें और रोज आगे से आगे जा सकें।

फिर आता हूं कभी दो दिन के लिए--दो दिन या तीन दिन के लिए कुछ ऐसा करो, ताकि काफी जोर से सारे मुद्दे पर बातें हो सकें।

तीसरा प्रवचन

धर्म की क्रांति

पिछले साल साईंबाबा आए थे और हमारे राज्यपाल जी, मुख्यमंत्री जी, वे भी वहां गए थे। और सुना है कि प्रधानमंत्री की पत्नी को एक ताबीज भी दिया था। मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि आध्यात्मिकता और चमत्कारों के बीच कोई नाता है?

आध्यात्मिकता और चमत्कार के बीच एक नाता है, वह नाता विरोध का है। आध्यात्मिक व्यक्ति चमत्कार के लिए राजी नहीं होगा, यह नाता है। और जो व्यक्ति चमत्कार के लिए राजी होता हो, उसे मदारी कहना चाहिए, आध्यात्मिक नहीं।

लेकिन मदारीपन से बहुत लोग प्रभावित होते हैं। अध्यात्म से प्रभावित होना भी बहुत मुश्किल है। मदारीपन बहुत तेजी से प्रभावित करता है। और इस भ्रम में हमें नहीं रहना चाहिए कि हमारे राज्यपाल या हमारे न्यायाधीश या हमारे मंत्री और मुख्यमंत्री, मदारियों के प्रभाव से मुक्त हैं। बल्कि सच तो यह है कि वे ज्यादा प्रभाव में हैं। जिन लोगों की भी बहुत महत्वाकांक्षा है, वे मदारियों के प्रभाव में बहुत जल्दी पड़ जाएंगे। क्योंकि मदारियों का दावा यह है कि उनके द्वारा किसी की भी महत्वाकांक्षा पूरी हो सकती है। कोई बीमार हो तो बीमारी ठीक हो सकती है, कोई पद पर न हो तो पद पर पहुंच सकता है, कोई किसी पद पर हो तो उसी पर जमे रहने का उपाय हो सकता है। किसी भी तरह की महत्वाकांक्षा से भरा हुआ व्यक्ति मदारी से प्रभावित होगा।

और भी एक बात है कि जब भी कोई समाज बहुत दरिद्र होगा, दीन होगा, दुखी होगा, तो मदारी बहुत प्रभावी हो जाएंगे। एक और कठिनाई है कि हमें यह भ्रम पैदा होता है कि हमारा राज्यपाल है या हमारा मुख्यमंत्री है या हमारे बहुत बड़े नेता हैं, चूंकि ये किसी दिशा में कोई ऊंचाई पा लिए हैं, इसलिए बाकी दिशाओं में ये साधारण ग्रामीणजन से बहुत आगे बढ़ गए हैं, यह हमें नहीं सोचना चाहिए। एक आदमी राज्यपाल हो सकता है और राज्यपाल की योग्यता का भी हो सकता है। लेकिन उसके पास मस्तिष्क बिल्कुल एक साधारण ग्रामीण का हो सकता है, बाकी सब क्षेत्रों में बिल्कुल ग्रामीण हो सकता है, जिंदगी के आम मामलों में वह एक साधारण आदमी हो सकता है। लेकिन इससे नुकसान होता है। और इन पदों पर जो लोग हैं उनका कुछ दायित्व है कि वे बहुत सोच-समझ कर कहीं जाएं। क्योंकि उनके जाने से बहुत सा प्रवाह उनके पीछे जाना शुरू हो जाता है। और ये जो मदारी हैं वे पूरी कोशिश करते हैं कि इस तरह के लोग आ जाएं। एक बार इस तरह के लोग आने शुरू हों, तो जनता पीछे से आनी शुरू होती है।

मैं तो अपने दो-एक मित्रों को तैयार कर रहा हूं कि जो-जो साईंबाबा करके दिखाते हैं, उसको मंच पर मैं किसी से भी करवा कर दिखलाना चाहता हूं और सारे मुल्क में घूमना चाहता हूं। मित्र तैयार हो गए हैं। और जल्दी ही आपसे अपेक्षा करूंगा कि आप मुझे सहारा दें कि वे जो-जो करते हैं वह खुली स्टेज पर किसी से भी करवा कर दिखा सकूं और उसका सारा सीक्रेट भी बता सकूं कि यह इस तरह किया जाता है। इसमें कुछ अध्यात्म नहीं है, यह निपट धोखा और शरारत है, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। लेकिन जब तक यह न किया जाए तब तक हम उसको उखाड़ भी नहीं सकते इस तरह के मामले को।

तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं। और आपसे कहना चाहता हूं कि अध्यात्म का मदारीपन से कोई संबंध नहीं है और चमत्कारों से कोई नाता नहीं है। आध्यात्मिक व्यक्ति के जीवन में और तरह के चमत्कार घटित होते हैं, ताबीज के और धूप के और मिठाई निकालने के और अंगूठी निकालने के नहीं। आध्यात्मिक व्यक्ति के जीवन में चमत्कार और ही तरह के घटित होते हैं। अब जैसे जीसस को सूली पर लटकाया जा रहा है और वह आदमी हंस रहा है, यह मिरेकल है और यह एक आध्यात्मिक जीवन का अर्थ रख सकता है। मंसूर को काटा जा रहा है और वह जो काट रहे हैं उनके लिए प्रार्थना कर रहा है--कि भगवान, इनको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते ये क्या कर रहे हैं। इसको मैं चमत्कार कहता हूं कि यह चमत्कार है। लेकिन यह कोई ताबीज निकालेगा और कोई मिठाई देगा और यह सब करेगा, यह सब चमत्कार नहीं है।

मेरे साथ एक महिला प्रोफेसर थी कालेज में। छह-सात वर्ष पहले उसने मुझे कहा कि मैं छोड़ कर जाना चाहती हूं और आपसे पूछने आई हूं कि मैं साईंबाबा के साथ ही जाकर जीवन लगा देने की मेरी इच्छा है। तो मेरे इस अध्यात्म में मुझे सफलता मिले, आप मुझे आशीर्वाद दे दें। तो मैंने उनसे कहा कि अगर मेरा वश चले तो मैं तुम्हें आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हें इस तरह के अध्यात्म में सफलता न मिल जाए। क्योंकि यह अध्यात्म नहीं है, मदारीपन है। और किसी दिन अगर तुम्हें समझ में आ जाए कि मदारीपन है, तो लौट कर कम से कम मुझे कह देना।

अभी मैं बंबई आया, मीटिंग से बोल कर उतरा, तो उस महिला ने आकर मेरे पैर छुए। तो मैंने पूछा कि कहां हो? क्या है? और तुमने पैर कैसे छुए?

उसने कहा, मैं सिर्फ आपके पैर उस दिन की स्मृति में छूने आई हूं कि जो आपने कहा था वह मैंने अनुभव कर लिया, अब मैं मुसीबत में पड़ गई हूं कि अब मैं क्या करूं? ये ताबीज जो निकलते हैं, सब बाजार से खरीदे जाते हैं। ये अंगूठियां जो आती हैं, सब बाजार से बनती हैं। ये सब बिस्तरों के नीचे छुपी रहती हैं, कपड़ों में छुपी रहती हैं। ये सब जब आंख से देख लिया है, तो अब मैं क्या करूं? अब मैं कहां जाऊं?

ये... अध्यात्म से इसका कोई भी संबंध नहीं है सिवाय इसके कि ये बिल्कुल गैर-आध्यात्मिक कृत्य हैं।

आपको मालूम ही होगा कि कन्हैयालाल मुंशी जी भी ये मदारी सत्य साईंबाबा से प्रभावित हो चुके हैं अब तक।

बिल्कुल हो जाएंगे। बिल्कुल हो जाएंगे। कोई भी बीमार आदमी, बुढ़ापे के करीब, मरने के करीब, कमजोर हो जाता है। चाहे वे मुंशी हों, चाहे कोई और हों।

अब तक मुंशी जी कमजोर तो नहीं थे...

न, मेरा मतलब यह है कि जैसे ही मौत करीब आनी शुरू होती है, बहुत कमजोरियां और बहुत भय पकड़ते हैं।

और मजा यह है कि उनका हाथ कंपता था शायद, वह हाथ कंपना ठीक भी हो सकता है। और इससे चमत्कार का कोई संबंध नहीं है। अगर मैं पहले एक ताबीज निकाल कर बताऊं और आकाश से एक अंगूठी चली आए, तो सामने वाला जो आदमी इन चीजों से इतना प्रभावित हो सकता है कि फिर मैं उसे धूल उठा कर दे दूं

और कहूं कि इससे तेरा हाथ ठीक हो जाएगा, तो उसका हाथ का कंपन ठीक हो सकता है। और यह बिल्कुल साइकोलॉजिकल मामला है। यह तो सारी दुनिया में, लार्डीज में होता है, वहां के पानी पीने से हो जाता है। पश्चिम में ढेर हीलर्स हैं, जो यह कर देंगे।

लेकिन मैं मानता हूं कि पश्चिम के हीलर फिर भी ईमानदार हैं। वे यह कहते हैं, यह बिल्कुल मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। और मनोवैज्ञानिक प्रभाव का परिणाम हो सकता है शरीर पर और शरीर ठीक हो सकता है। लेकिन इसमें न कोई अध्यात्म है और न कोई चमत्कार है। इसमें कोई चमत्कार नहीं है। हाथ ठीक भी हो सकता है।

बीमारी मानसिक रूप से पैदा भी की जा सकती है। और चूंकि अब यह सिद्ध होता चला जा रहा है कि सौ में से अस्सी परसेंट बीमारियां किसी न किसी रूप में मानसिक रूप से संबंधित होती हैं। और सौ में से पचास परसेंट बीमारियां तो मानसिक होती हैं। तो जो बीमारी मानसिक है... जैसे मैं आपको उदाहरण के लिए कहूं, दुनिया में जितने सांप होते हैं उनमें सत्तानबे परसेंट सांप में कोई जहर नहीं होता, लेकिन उनका काटा हुआ आदमी मर सकता है। जहर नहीं होता, लेकिन उनका काटा हुआ आदमी मर सकता है। और मर जाता है सिर्फ इसलिए कि उसको सांप ने काट लिया! लेकिन अगर इस आदमी की पूजा-पत्री की जाए, झाड़-फूंक की जाए और इसे किसी तरह विश्वास दिलाया जा सके कि यह ठीक हो जाएगा, तो यह ठीक हो जाएगा।

अब मजे की बात यह है कि पहली उसकी भ्रांति थी मरने की ही, वह जो बीमारी थी वही झूठी थी। सांप में तो जहर था ही नहीं। सिर्फ, सांप ने काटा, इसलिए वह घबड़ा कर मर रहा था। अगर यह घबड़ाहट किसी भी तरह से हटाई जा सके, तो वह आदमी बच जाएगा। बीमारी झूठी थी, झूठा इलाज काम कर जाएगा।

या यह भी हो सकता है कि बीमारी बिल्कुल वास्तविक रही हो, लेकिन अगर मन बहुत दृढ़ निश्चय कर ले, और दृढ़ निश्चय करने में यह मदारीगिरी सहायक होती है। क्योंकि अगर मैं पहले दस-पांच ऐसे चमत्कार दिखाऊं जो आपके लिए विश्वास योग्य न हों, और उन पर आपका विश्वास आ जाए। और फिर मैं आपको धूल दे दूं, तो आप उस धूल को जिस विश्वास से ले जा रहे हैं--कि जिस आदमी ने ऐसे चमत्कार किए, उसकी धूल तो सार्थक होने ही वाली है, इस पर अविश्वास का कोई कारण नहीं है--तो यह धूल आटोहिप्नोटिक असर करेगी, इसका सम्मोहक असर होगा, यह फायदा कर सकती है।

लेकिन जरा मुंशी जी से यह पूछना कि हाथ फिर तो नहीं हिलने लगा? जहां तक मुझे किसी ने कहा है कि हाथ फिर हिल रहा है। लेकिन अब ये अखबार वाले खबर नहीं छाप रहे हैं और न मुंशी जी कह रहे हैं। मुझे अभी किसी ने कहा है आकर कि हाथ फिर हिलने लगा है। तो आप जरा मुंशी जी को पता लगाइए कि हाथ अगर फिर हिलने लगा हो, तो अब इसकी अखबार में खबर देनी चाहिए। और अब दुबारा फिर कहना चाहिए कि इसको ठीक करो! और मैं मानता हूं कि दुबारा ठीक करना मुश्किल पड़ जाएगा।

हमारी कठिनाई क्या है, मैं आपको बताऊं। मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। घर के बाहर शाम को टहल रहा हूं, एक बगल की खिड़की से एक औरत मुझे झांक रही है बड़ी देर से। फिर वह नीचे आई और एक छोटे बच्चे को लाकर उसने मेरे पैर में लिटा दिया और कहा, आप इसको छू दें। और मुझे पक्का विश्वास है कि यह ठीक हो जाएगा।

उसको डिप्थीरिया हुआ है, वह गला बिल्कुल रुंध गया है।

मैंने उससे कहा कि मुझे छूने में कोई हर्जा नहीं। खतरा यही है कि कहीं यह ठीक न हो जाए! क्योंकि अभी यह मर नहीं गया है, यह ठीक हो भी सकता है। मेरे छूने से नहीं; यह मैं न भी छुऊं तो भी ठीक हो सकता है।

अभी यह मर तो नहीं गया है। अभी इसके पचास मौके जिंदा रहने के, पचास मौके मरने के हैं। मैं, छूने में मुझे हर्ज नहीं, लेकिन छूने से कहीं अगर यह बच गया, तो खतरा है। क्योंकि तब तुम्हें यह ख्याल होगा कि मेरे छूने से बच गया।

वहां भीड़ लग गई। और जिस घर में मैं ठहरा हूं उस घर के लोग भी कहने लगे, आप ऐसी कठोरता की बातें कर रहे हैं! आपको छूने में क्या बिगड़ता है? वह स्त्री रो रही है। वह कह रही है, अगर मेरा बच्चा मरा तो आप ही जिम्मेवार होंगे। आप छू दें।

मैंने घर के लोगों को बहुत समझाया। वे कोई मानने को राजी नहीं। उस बच्चे को छूना पड़ा।

दुबारा जब मैं गया, तो वह मुश्किल हो गई वहां। वहां न कोई आध्यात्मिक जिज्ञासु आया सुनने फिर मुझे। फिर तो वहां लंगड़े-लूले, अंधे, वे सब चले आ रहे हैं कि आप हमको छू दें। वह बच्चा बच गया है।

अगर सौ मरीजों को मैं छुऊं, तो पचास तो बचेंगे ही। मेरे छूने से नहीं! जो नहीं बचेंगे उनकी फिकर करने की जरूरत नहीं, वे कोई प्रचार नहीं करेंगे। जो के.एम.मुंशी ठीक नहीं हुए होंगे, उन्होंने कोई प्रचार नहीं किया है। और जो के.एम.मुंशी ठीक हो गए, वे प्रचार कर रहे हैं। जो बच जाएंगे वे मेरे प्रचारक हो जाएंगे, जो नहीं बचेंगे उनसे कुछ लेना-देना नहीं। धीरे-धीरे मेरे पास भीड़ इकट्ठी हो जाएगी उन लोगों की जिनको फायदा हो गया है। और वे हवा पैदा करेंगे। और वह हवा जारी रहती है।

इसमें कोई न मूल्य है, न कोई अध्यात्म है, न कोई अर्थ है। और जब के.एम.मुंशी जैसे लोग भी इस तरह के मदारीपन के शिकार होते हैं, तो सोचना चाहिए कि इस मुल्क में जिनको हम बुद्धिमान कहें, समझदार कहें, साहित्यकार कहें, उनकी मानसिक स्थिति भी अत्यंत बचकानी है, उनकी मानसिक स्थिति भी कोई बहुत श्रेष्ठ और कुछ ऊंची और वैज्ञानिक नहीं है। उनकी भी सोचने की कोई सामर्थ्य बहुत ज्यादा नहीं है। और इस तरह के लोग शोषण करवाने का अड्डा बनते हैं। और के.एम.मुंशी कह देते हैं, तो फिर न मालूम कितने लोग जो के.एम.मुंशी को समझते हैं कि वे कुछ सोच-विचारशील हैं, वे सोचते हैं कि अब तो सब ठीक ही होगा और सब ठीक हो जाएगा। जब के.एम.मुंशी को हुआ है तो सब ठीक होना ही चाहिए।

लेकिन मैं आपसे पूछता हूं कि आप ले जाएं न दस-पांच मरीजों को, पत्रकार ले जाएं दस-पांच मरीजों को, और ठीक करवा कर देखें कि कितने ठीक होते हैं। और जो ठीक होते हैं वे क्यों ठीक होते हैं, जो ठीक नहीं होते वे क्यों ठीक नहीं होते। और यह भी देखें कि यह मामला कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप मेरे पास भी ले आएं तो उतने ठीक हो जाएं; और आप पंखे के पास ले जाएं तो भी उतने ठीक हो जाएं; और आप झाड़ के पास ले जाएं तो भी उतने ठीक हो जाएं। तब फिर कोई मतलब नहीं रहा। यह ठीक होना बिल्कुल ही स्वाभाविक हो गया, कुछ तो ठीक होंगे ही। इसीलिए तो होम्योपैथी भी काम करती है, बायोकेमी भी काम करती है, आयुर्वेद भी काम करता है, झाड़-फूंक भी काम करती है, खाली पानी भी काम करता है, मूत्र-चिकित्सा भी काम करती है, दुनिया की सब बेवकूफियां काम करती हैं बीमारी ठीक करने में।

और मजे की बात यह है कि कोई पैथी आप इनकार नहीं कर सकते कि यह काम नहीं करती, सब पैथियां किसी न किसी को ठीक करती हैं। और उसका कुल कारण इतना है कि लोग ठीक होने ही हैं। सौ आदमी बीमार पड़ेंगे तो सौ ही नहीं मर जाने वाले हैं। लोग ठीक होने ही हैं। इसलिए पानी भी दो, तो भी ठीक होंगे। कुछ भी मत दो, राख दो, तो भी ठीक होंगे। फिर जो ठीक हो जाएगा वह प्रचार करेगा। और जो ठीक नहीं हो जाएगा वह आपको भूल जाएगा, वह दूसरे किसी गुरु को खोजेगा जहां ठीक हो सकता है।

आपने भी वह शॉक थैरेपी का प्रयोग चालू कर लिया दिखता है।

बिल्कुल, कर ही रहा हूं दिन-रात।

आपने मुंशी जी के बारे में जो कहा, उसमें मुंशी जी ने कहीं पर भी नहीं कहा है। वह सिर्फ उन्होंने जो लिखा है उसमें कहा है कि मैं वहां अविश्वास से गया था और जब उन्होंने वह राख मेरे हाथ पर लगाई, उसके बाद यह हुआ, तो मुझे आश्चर्य हुआ है, वह उन्होंने कहा है। तो वह साइकोलॉजिकल इफेक्ट ऑफ प्योरिंग नहीं है।

हां-हां, बिल्कुल ठीक। आप ठीक कहते हैं। मैं आपसे बात करता हूं। आप हैरान होंगे कि माइंड के काम करने के नियम बहुत अजीब हैं। और माइंड के काम करने का एक खास नियम हैः लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट। अगर आप कुए को, पश्चिम में जिस आदमी ने मन की बीमारियों से हजारों लोगों को ठीक किया, अगर उसकी किताबें पढ़ेंगे तो लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट जैसा एक नियम आपको पता चलेगा--विपरीत परिणाम का नियम।

अगर कोई आदमी यह कह कर जाता है कि मैं बिल्कुल अविश्वासी हूं, मुझे कुछ विश्वास नहीं है। तो यह सिर्फ ऊपर के मन का एक हिस्सा कह रहा है और इसके खिलाफ मन का पूरा हिस्सा तैयार हो रहा है--कि नहीं, कुछ होना चाहिए! नहीं, कुछ होना चाहिए! माइंड दो हिस्सों में बंटा हुआ है।

मुंशी जी ऊपर से अपनी बुद्धिमानी से सोच रहे हैं कि मैं खिलाफ हूं। मैं नहीं मानता इन बातों में। लेकिन मुंशी जी का जो अनकांशस है, वह इसके खिलाफ इकट्ठा होता चला जाएगा। और इस बात की ज्यादा संभावना है कि जो आदमी सहज विश्वास से भरा हुआ गया था वह भी शायद ठीक न हो और मुंशी जी ठीक हो जाएं।

आप देखेंगे यह जान कर, एक आदमी साइकिल सीख रहा है, नया-नया साइकिल सीख रहा है। सड़क पर एक पत्थर पड़ा हुआ है। वह आदमी कहता है कि मुझे पत्थर से नहीं टकराना। अब सड़क बहुत बड़ी है, अगर वह निशाना लगा कर भी टकराना चाहे तो पत्थर से टकराना आसान नहीं है सिक्खड़ आदमी के लिए। लेकिन वह कहता है, मुझे पत्थर से नहीं टकराना! और उसके हाथ पत्थर की तरफ मुड़ना शुरू हो गए। और वह कहता है, मुझे पत्थर से बचना है! और पत्थर पर अटेंशन टिक गई उसकी। अब सारी सड़क उसको दिखाई नहीं पड़ती, सिर्फ पत्थर दिखाई पड़ रहा है। और पत्थर से बचने की कोशिश में वह पत्थर से टकराने वाला है।

ओशो, आपने जो सुबह में बात की, प्रभु के द्वार के बारे में आपने जो कुछ कहा, उस सारे प्रवचन में प्रभु और केंद्र में प्रभु जैसा कोई साइकोलॉजिकल कांसेप्ट, ऐसा कोई भी ख्याल जो आपके ख्यालात में थे, तो आप क्या सहमत हैं? क्योंकि यह बात तो फेथ की है कि प्रभु है और मैं उसको खोजने जाने वाला हूं। और खोजने की प्रोसेस अच्छी है। तो क्या वह हाइपोथेटिकल प्रोसेस है?

नहीं; मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रभु है; मैं यह कह रहा हूं, जो है उसको मैं प्रभु कहता हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रभु है; मैं यह कहता हूं कि जो है, दैट व्हिच इ.ज, उसको मैं प्रभु कह रहा हूं।

उसको कोई भी नाम दे दें--सत्य कहें, प्रभु कहें, एक्स वाय .जेड कुछ भी कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन कुछ है जो हमें अज्ञात है और उसको जानना है और जानने के द्वार खोजने हैं। कोई उसे प्रभु कहे, कोई

उसे सत्य कहे, इससे मुझे कोई किसी तरह का अस्वीकार नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि प्रभु है; मैं यह कहता हूं कि जो है उसे मैं प्रभु का नाम देता हूं। आपको कोई दूसरा नाम देना हो तो नाम देना बिल्कुल ही अपने हाथ की बात है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह मैं कहता हूं कि जो है वह हमें ज्ञात नहीं है। और उसको खोजने के लिए मार्ग खोजना पड़ेगा, द्वार खोजना पड़ेगा।

तो उसका द्वार क्या हो सकता है?

तो मैं कहता हूं, विश्वास उसका द्वार नहीं हो सकता; विचार उसका द्वार हो सकता है। इसलिए मैं कोई हाइपोथीसिस नहीं बना रहा प्रभु की। मेरे लिए प्रभु का मतलब हैः दि टोटेलिटी। कोई एक आदमी कहीं बैठा हुआ, ऐसा कोई प्रभु-परमात्मा नहीं है। लेकिन यह सारा अस्तित्व, यह पूरा एक्झिस्टेंस, यह जो कुछ भी है सब तरफ फैला हुआ, यह सब है और इसका केंद्र होगा, इसके जीवन के मूल-स्रोत होंगे। वे मूल-स्रोत क्या हैं, कहां हैं, कैसे हम उन्हें खोजें, कैसे हम उन्हें जानें--उसकी खोज धर्म है।

यहां पर जो भाषावी अखबार है, उसमें प्रचार किया जाता है कि आपका जो प्रवचन है, आपका जो प्रचार है, उनका उद्देश्य कम्युनिज्म फैलाने का है। और आप लगभग माओ के बराबर हैं। और दूसरा एक आज प्रश्न उठाया गया है, आपको कंपेयर करने का जे.कृष्णमूर्ति से। तो इस बारे में आपका क्या ख्याल है?

पहली तो बात यह, मेरी समझ में दुनिया का कोई भी समझदार आदमी--बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट से लेकर आज तक--कोई भी समझदार आदमी अनिवार्यरूपेण किसी न किसी तरह का कम्युनिस्ट होगा। कम्युनिज्म का मतलब लेकिन साफ हो जाना चाहिए।

दुनिया के सारे समझदार लोगों की चेष्टा यह चल रही है कि एक ऐसा समाज आ जाए जहां प्रत्येक मनुष्य समानता की स्थिति को उपलब्ध हो जाए। और प्रत्येक व्यक्ति को समान विकास का अवसर उपलब्ध हो जाए। अगर समान विकास के अवसर और मनुष्य की समानता की कोशिश कम्युनिज्म है, तो मैं कम्युनिस्ट हूं। और जो आदमी कम्युनिस्ट नहीं है वह आदमी आदमीयत का दुश्मन है।

लेकिन अगर कोई समझता हो कि मार्क्स के अंधे भक्त, दुनिया पर जबरदस्ती सारी लोकतांत्रिक भावनाओं को कुचल कर तानाशाही थोपने वाले लोग, अगर कोई सोचता हो कि ईश्वर, सत्य, प्रेम और आत्मा की सारी विचारधारा की हत्या कर देने वाले लोग कम्युनिस्ट हैं, तो मैं जितना कम्युनिज्म का विरोधी हो सकता हूं उतना कोई और नहीं हो सकता है। उस स्थिति में मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं।

मेरी स्थिति ठीक से समझ लेनी चाहिए। मेरी समझ यह है कि सारे जगत की चिंतना इस दिशा में चल रही है कि हम कैसे एक ऐसा समाज ले आएं जहां मनुष्य मनुष्य से हीन न हो। कोई मनुष्य किसी से हीन न हो। उस दिशा में मैं भी पूरी तरह संलग्न हूं। और यह बात सच है कि मेरे सारे प्रवचनों का अंतिम लक्ष्य निश्चित रूप से यही है कि एक ऐसा समाज बने जहां सारे लोग समान हों।

फिर मेरी यह भी समझ है कि जिस दिन समान समाज होगा, व्यक्तिगत संपत्ति नहीं होगी, तो न केवल भौतिक विकास होगा बल्कि आध्यात्मिक विकास भी होगा। और यहां उन तथाकथित कम्युनिस्टों से मैं बिल्कुल ही उलटा हूं। मेरी मान्यता यह है कि दुनिया में धर्म नहीं आ सका, क्योंकि अधिकतम लोग रोटी-रोजी के लिए ही मर जाते हैं, धर्म की खोज कौन करे? जिस दिन दुनिया में समानता होगी और लोग सुखी होंगे और जीवन संपन्न होगा, उस दिन धर्म पैदा हो सकता है, उसके पहले पैदा नहीं हो सकता।

इसलिए मैं यह निरंतर कहता हूं कि बुद्ध या जैनों के चौबीस तीर्थंकर, सब राजाओं के लड़के हैं। राम और कृष्ण, सब राजाओं के लड़के हैं। ये राजपुत्र ही इतनी ऊंचाइयां पा सके जीवन के सत्य की खोज में, उसका कोई कारण है। उसका बुनियादी कारण यह है कि जिस आदमी को संसार का सब भोग देखने को मिल जाता है, उसका चित्त संसार के ऊपर उठने की कोशिश में संलग्न हो जाता है।

यह भी मेरी मान्यता है कि एक गरीब समाज कभी धार्मिक नहीं हो सकता। गरीब समाज बेईमान और बदमाश ही होगा। बच ही नहीं सकता वह, धार्मिक हो नहीं सकता। वह चरित्रहीन ही होगा। गरीब समाज का चरित्रवान होना अत्यंत अस्वाभाविक है, संपन्न समाज ही... । मेरा यह कहना नहीं है कि संपन्न समाज अनिवार्य रूप से धार्मिक होगा। मेरा कहना है, संपन्न समाज धार्मिक हो सकता है। उसके पास अधार्मिक होने की जो संभावना थी वह कम हो गई।

इसलिए हिंदुस्तान भी जिन दिनों धार्मिक था, वे हिंदुस्तान के इतिहास में संपन्नता के दिन थे। आज अमेरिका की संभावना है कि वह धार्मिक हो जाए। और कल रूस की संभावना है कि वह धार्मिक हो जाए। और जिस दिन वे धार्मिक होंगे, उनकी धार्मिकता गरीबी से एस्केप नहीं होगी, एक संपन्न आदमी की खोज होगी। हमारा अगर आदमी मंदिर भी जाता है तो वहां भी रोटी मांग रहा है, वहां भी तनख्वाह मांग रहा है, नौकरी मांग रहा है, लड़की की शादी मांग रहा है। वह मंदिर में भी जो मांग रहा है वह वह है जो संसार में मिल जाना चाहिए था।

तो मेरी दृष्टि में, जिस दिन सारी दुनिया समता को उपलब्ध होगी उस दिन दुनिया में धर्म का एक विस्फोट, एक्सप्लोजन हो जाएगा। और उस एक्सप्लोजन के लिए साम्यवाद जैसी कोई व्यवस्था आ जानी अत्यंत जरूरी है।

लेकिन तथाकथित कम्युनिस्टों से मेरा कोई लेना-देना नहीं। असल में, किसी तरह के इज्म में और वाद में मेरी कोई आस्था नहीं है। और मेरा मानना है कि सब आइडियालॉजी मनुष्य के चिंतन को नुकसान पहुंचाती हैं, क्योंकि उसे बांधती हैं। मैं चाहता हूं मनुष्य का विचार मुक्त हो। और मुक्त विचार जो ठीक समझे वह करे।

तो यह बात थोड़ी दूर तक ठीक है। लेकिन ये सब बचकानी बातें हैं कि मेरे हस्ताक्षर को माओ के हस्ताक्षर से मिलाने की कोशिश की जाए। ये सब बच्चों जैसी बातें हैं। और ये तभी होती हैं जब हमें और कुछ बुद्धिमानीपूर्ण बातें कहने को नहीं सूझतीं, तब फिर इन बचकानी और चाइल्डिश बातों को खोजा जाता है।

तो ओशो, आप ज्यादा बल दे रहे हैं भौतिक संपन्नता पर, बजाय इसके कि आध्यात्मिक विकास पहले हो!

आध्यात्मिक विकास भौतिक विकास के बाद का चरण है। पहले हो नहीं सकता। व्यक्तिगत रूप से हो सकता है, एकाध आदमी कर सकता है। लेकिन बड़ी कठिन तपश्चर्या से गुजरना पड़े। तपश्चर्या इसीलिए करनी पड़ती है वह, कि वह एक बिल्कुल प्रकृति के नियम के प्रतिकूल काम करने की कोशिश कर रहा है। मेरा मानना है कि शरीर पहले है, आत्मा पीछे है। भौतिक पहले है, अध्यात्म पीछे है। और जिसका शरीर अभी अतृप्त है और परेशान और पीड़ित है, वह आत्मा की बात सोच भी नहीं सकता। और जिसके जीवन में अभी भौतिक सुविधा के लिए हम सामान्य इंतजाम नहीं कर पाए, उसके अध्यात्म की बातें अफीम की बातें हैं। वह मार्क्स ने ठीक कहा है। वह सिर्फ दुख को भुलाने के लिए अध्यात्म की बातें कर रहा है।

तो मेरी मान्यता यह है, मेरा जोर है इस बात पर कि भौतिकता की पूर्णता से व्यवस्था होनी चाहिए। लेकिन आप यह मत सोचना कि मेरा लक्ष्य भौतिकता है। जोर मेरा भौतिकवाद पर है और लक्ष्य मेरा अध्यात्मवाद है।

स्वामी विवेकानंद जी ने भी यही कहा था। बहुत पुराने जमाने में उन्होंने यह बात कही है।

जरूर, जरूर। जरूर कही होगी, जरूर कही होगी।

लेकिन आपके रात के प्रवचन से ऐसा मालूम होता है जैसे कि सबसे पहले आप यह बात करने लगे हैं। जैसे कि स्वामी विवेकानंद ने और किसी ने कुछ कहा ही नहीं है। तो आपके अनुसार तो स्वामी विवेकानंद और गांधी जी की मूर्ति का संपूर्ण भंजन होना चाहिए...

मैं समझा। मैं क्यों ऐसा कर रहा हूं? हो सकता है कोई बात जो मैं कह रहा हूं वह विवेकानंद ने कही हो। लेकिन मेरा दिमाग विवेकानंद से बिल्कुल भिन्न दिमाग है, उसका संदर्भ अलग है। और इसलिए जब मैं अगर कोई बात कह रहा हूं वह गांधी ने भी कही हो, यह हो सकता है, लेकिन मेरा दिमाग बिल्कुल अलग है, संदर्भ अलग है। कोई एकाध टुकड़े में कोई बात मेल खा सकती है। लेकिन मैं विवेकानंद का नाम इसलिए नहीं ले सकता हूं कि विवेकानंद का नाम लेते ही से ऐसा भ्रम पैदा होगा कि जैसे विवेकानंद से कोई सहमति है मेरी। विवेकानंद से मेरी सहमति नहीं है अनेक मामलों में। इस मामले में भी बहुत दूर तक नहीं है।

जैसे विवेकानंद दरिद्रनारायण कहते हैं, मैं इसको निपट नासमझी समझता हूं। दरिद्र को किसी तरह का सम्मान देना दरिद्रता को सम्मान देना है। दरिद्र को कोई सम्मान की जरूरत नहीं है दुनिया में। दरिद्रता मिटनी चाहिए, जैसे बीमारी मिटनी चाहिए। और जब हम दरिद्रता को घृणा करेंगे तो ही दरिद्रता मिटने वाली है, नहीं तो नहीं मिटने वाली।

लेकिन हिंदुस्तान की एक परंपरा है, वह दरिद्र को सम्मान दे रही है। और दरिद्र को सम्मान देने से दरिद्र को भी अच्छा लगता है। दरिद्रता नहीं मिटती, लेकिन उसको राहत मिलती है। उसको लगता है कि दरिद्र होना भी कोई बड़ी खूबी की बात है।

दरिद्र होना निपट गंवारी की बात है। और हम दरिद्र हैं इसलिए कि विवेकानंद जैसे व्यक्ति...

दे हैव नॉट ग्लोरीफाइड दि पावर्टी। यू आर मिसरिप्रेजेंटिंग आल दीज पर्सन्स। आई एम वेरी मच श्योर दैट विवेकानंद हैज नॉट ग्लोरीफाइड दि पावर्टी।

देखिए मैं आपसे बात करता हूं। विवेकानंद या उस तरह के सारे लोग, जो लोग भी स्वेच्छा से दरिद्रता को वरण करने में कोई गौरव मानते हैं, वे दरिद्रता को ग्लोरीफाई करते ही हैं। आखिर विवेकानंद एक भिखारी की तरह खड़े हुए हैं। और वह जो भारत की पुरानी परंपरा है भिखारी को बहुत आदर देने की, सम्मान देने की; भिक्षु को आदर देने की, सम्मान देने की; वे उसी के हिस्से हैं।

हालांकि विवेकानंद अमेरिका से बहुत कुछ सीख कर लौटे, और उसमें से एक सीख यह भी थी कि दरिद्र होना कोई सम्मान की बात नहीं है। लेकिन हिंदुस्तान से जाते वक्त विवेकानंद के मन में ये सब बातें नहीं थीं। यह अमेरिका से विवेकानंद सीख कर लौटे कि संपन्नता भी धर्म की तरफ जाने का मार्ग हो सकती है। यह तो हमने बहुत चिल्लाया कि विवेकानंद ने अमेरिका को बहुत सिखाया। अमेरिका ने विवेकानंद को कितना सिखाया, उसका कोई हिसाब हमने नहीं रखा। अमेरिका से विवेकानंद के आने के बाद विवेकानंद बिल्कुल दूसरे आदमी हैं। और इसलिए बंगाल में विवेकानंद को जो सम्मान मिलना चाहिए था वह दो-चार दिन में खतम हो गया।

अमेरिका से विवेकानंद निवेदिता को साथ लेकर चले आए। हिंदुस्तान का कोई संन्यासी कभी स्त्री को साथ लेकर खड़ा नहीं हुआ था। आते से ही बंगाल में तकलीफ शुरू हो गई। अमेरिका में विवेकानंद को जाकर पता चला कि स्त्री और पुरुष के बीच का इतना फासला अधार्मिक है, गैर-आध्यात्मिक है। यह अमेरिका से सीख कर वे लौटे। और हिंदुस्तान में स्त्री-पुरुष का इतना फासला सेक्सुअलिटी का सबूत है। यह भी अमेरिका से सीख कर लौटे। लेकिन इधर आकर जब हिंदुस्तान में खड़े हुए तो तकलीफ शुरू हुई।

आपको पता होगा कि सिस्टर निवेदिता को आश्रम छोड़ देना पड़ा। विवेकानंद के मरने के बाद उसको आर्डर छोड़ देना पड़ा। उसको अलग कर दिया गया आर्डर से। उसको अलग हट कर रहना पड़ा, दूसरी जगह खड़े होना पड़ा।

ये जो अमेरिका से जो-जो विवेकानंद सीख कर आए थे, उसकी कोई चर्चा भारत में नहीं होती। क्योंकि हमको तो यह भ्रम है कि हम हर चीज में जगतगुरु हैं, हम कहीं किसी से कुछ सीखते हैं? उसमें एक सीख कर वे यह भी बात आए थे कि संपन्न देश ही धार्मिक हो सकता है।

लेकिन मेरा जो कहना है, मेरा कहना विवेकानंद से बुनियादी भिन्न है। इसलिए मैं किसी की बात नहीं कहता। और जो आपको यह ख्याल पैदा होता है कि जैसे मैं ही पहली दफे कह रहा हूं। कुछ बातें निरंतर बार-बार कही जाती हैं, लेकिन फिर भी चूंकि संदर्भ बदल जाता है, इसलिए वे हर बार नई दफे कही जाती हैं। उनको दुबारा कहा ही नहीं जा सकता।

ओशो, आपने सभ्यता के एक गलत और भ्रांतिपूर्ण पहलू को पेश किया है, इस मायने में कि इस देश ने गरीबी, दरिद्रता को नहीं, बल्कि त्याग को हमेशा आदर दिया है। अगर राम ने चौदह साल तक राज्य छोड़ा, तो क्या समझते हैं उनको, यह त्याग की रिस्पेक्ट हुई, न कि गरीबी की।

समझा। ठीक है, इसकी बात करें, इसको समझ लें। बहुत बारीक है। और बारीक है इसलिए दिखाई नहीं पड़ती। कि सिर्फ गरीब कौम ही त्याग का आदर करती है। बारीक है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ती।

भारत तो संपन्न देश रहा है!

नहीं, संपन्न कुछ वर्ग था भारत का। भारत पूरा कभी संपन्न नहीं था, भारत का कुछ वर्ग संपन्न था। उस संपन्न वर्ग से धार्मिक लोग पैदा हुए। उस संपन्न वर्ग से धर्म की चर्चा भी चली। भारत कभी संपन्न नहीं था। समाज की तरह कभी संपन्न नहीं था। लेकिन हां, भारत दरिद्रता में तृप्त था। इसलिए कभी दरिद्रता के प्रति

विद्रोह पैदा नहीं हुआ। इससे आप यह मत समझ लेना कि भारत संपन्न था। भारत तो अपनी दरिद्रता में अभी भी तृप्त होता अगर पश्चिम का संपर्क नहीं आता। भारत के दरिद्र को अभी भी कोई चिंता नहीं थी। लेकिन पश्चिम के संपर्क ने बेचैनी पैदा कर दी। और दरिद्र को यह ख्याल पैदा कर दिया कि दरिद्र होना समाज की व्यवस्था का परिणाम है। कोई दरिद्र होना अनिवार्यता नहीं है। लेकिन भारत के संपन्न लोगों ने दरिद्र को यह समझाया था कि दरिद्र होना तो तेरे अपने पापों का फल है, दरिद्र होना तेरी मजबूरी है, दरिद्र तुझे होना पड़ेगा।

भारत तो दरिद्र था; कुछ लोगों को छोड़ कर, भारत हमेशा दरिद्र रहा।

जहां भी देश दरिद्र होगा, वहां त्याग का सम्मान होगा। क्यों होगा? त्याग का सम्मान इसलिए होगा, त्याग का मतलब हैः कोई अमीर आदमी दरिद्र बनता है। और जब कोई राजपुत्र--महावीर या बुद्ध जैसा राजपुत्र--दरिद्र बने, तो सारे दरिद्र ग्लोरीफाई होते हैं। वे कहते हैं कि देखो, दरिद्रता कितनी अदभुत है कि राजपुत्र को भी दरिद्र होना पड़ता है! और वे सारे दरिद्र उस राजपुत्र को आदर देते हैं कि वह भिखारी हो गया, कितना महान कार्य किया है उसने! क्योंकि दरिद्रों को इससे तृप्ति मिलती है।

और राजपुत्र क्यों दरिद्र होता है?

मेरा अपना मानना यह है कि जिसके पास भी संपत्ति के सब सुख उपलब्ध हो जाएंगे वह उनसे ऊब जाएगा और उनसे छुटकारा पाने की कोशिश करेगा। अमीर आदमी की जो लास्ट लग्जरी है, वह दरिद्र होने का मजा लेना है। लेकिन दरिद्र आदमी को यह पता नहीं चल सकता। यह दरिद्र आदमी को पता नहीं चल सकता।

जो आदमी पैदल चल रहा है, वह नहीं समझ सकता कि जो अमीर एक मिनट पैदल नहीं चलता, उसको पैदल चलने में कैसा मजा आता है। जो आदमी भूखा मर रहा है अकाल में, उसको पता भी नहीं कि अमेरिका में सैकड़ों कल्ट चल रही हैं उपवास की। ओवरफेड लोग हैं। जब भी कोई कौम ओवरफेड हो जाएगी, उपवास का सिद्धांत जारी हो जाएगा। क्योंकि उनको बड़ा मजा आएगा एक दो-चार-दस दिन उपवासे रहने में। एक गरीब आदमी को कहो कि तू तो बड़े मजे में है, भूखा मर रहा है। तू तो बड़े मजे में है, उपवास करना पड़ता है खाने वाले को! तू तो पहले से ही उपवास कर रहा है, भगवान की तेरे पर बड़ी कृपा है। तो दरिद्र को समझ नहीं पड़ेगी यह बात। लेकिन दरिद्र भी उपवास का आदर करेगा। जब भी समाज दरिद्र होगा तो त्याग का आदर होगा।

मेरी अपनी समझ यह है कि एक गरीबी वह है जो अमीर आदमी वरण करता है। वह आखिरी अमीरी है। और उस अमीरी को गरीब समझता है कि यह मेरी गरीबी की प्रशंसा हुई। और गरीब बड़ा प्रसन्न होता है, और गरीब बड़ा आदर देता है। गरीब की अमीर के प्रति ईर्ष्या है और त्यागी के प्रति सम्मान है। वह उसी ईर्ष्या का दूसरा पहलू है। गरीब ईर्ष्यालु है, दूसरे के पास जो है उसके कारण। जब दूसरा उसको छोड़ देता है तो वह आदर देता है उसे। जब एक गरीब आदमी देखता है कि कोई धनपति, आकाश से, हवाई जहाज से चलने वाला पैदल चलता है, तो उसे पता चलता है कि पैदल चलने में हम भी गौरवान्वित हो रहे हैं।

दुनिया जिस दिन संपन्न हो जाएगी, उस दिन त्याग का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। त्याग गरीबी के ही हिस्से का परिणाम है।

तो आप कहते हैं, सूक्ष्म बात है।

आप ही के तर्क की बुनियाद को लेकर अगर हम चलें, तो आज अमेरिका में समाजशास्त्री विश्लेषण के बाद यह निष्कर्ष निकला है कि वहां इतनी संपन्नता के बावजूद भी इक्कीस-बाईस साल के नौजवानों में जो बेचैनी, विक्षिप्तता, निराशा आ गई है समाज के प्रति वह क्या...

मैं समझा, मैं बताऊं आपको। अमेरिका में जो बेचैनी है युवकों के दिल में, वह एक धार्मिक युग के प्रारंभ की शुरुआत है। ऐसा कभी भी नहीं हुआ था दुनिया में। ऐसी बेचैनी होती थी, लेकिन किसी-किसी घर में होती थी। बुद्ध जो हैं या महावीर जो हैं, ऐसे लोगों को बेचैनी होती थी। सब इनके पास था। सुंदर से सुंदर स्त्रियां इकट्ठी कर रखी थीं। बिहार में जितनी सुंदर स्त्रियां हो सकती थीं, एक-एक घर में कैद थीं। सारी सुंदर लड़कियां थीं, सारा धन था, सब वैभव था। जब यह सब मिल जाता है तो बेचैनी होती है--अब क्या? परेशानी होती है--अब क्या करें? यह कभी-कभी एकाध बड़े परिवार के लोगों को होती रही।

अमेरिका उस जगह पहुंच गया है जहां करोड़ों परिवार उस हालत में आ गए हैं जहां बुद्ध और महावीर का परिवार रहा हो। यह पहली दफे घटना घटी है कि एक पूरा समाज एफल्युएंट हो गया है। अब तक संपन्न परिवार हुए थे, संपन्न समाज नहीं था। अमेरिका में मनुष्य-जाति के इतिहास का बिल्कुल नया अध्याय शुरू हो रहा है। एक बहुत बड़ा वर्ग संपन्न हो गया है, जो इस हालत में है कि पूछ सके कि अब क्या?

तो उनके बच्चे बेचैन हो गए हैं। और उनके बच्चे एक संक्रमण से गुजरेंगे। उनके बच्चे सब उपद्रव करेंगे। शराब पीएंगे, मेस्कलीन लेंगे, लिसर्जिक एसिड लेंगे, नाचेंगे, विवाह तोड़ेंगे, सेक्सुअलिटी की आर्गीज में उतर जाएंगे, वे यह सब करेंगे। और तब यह सवाल और गहरा हो जाएगा--अब क्या? अब क्या? और इस "अब क्या?" से वह स्थिति पैदा होगी जो धर्म को जन्म देती है। अमेरिका वहां खड़ा है जहां पचास सालों में धर्म के एक बहुत बड़े पुनरुत्थान की संभावना है।

आप वहां नहीं खड़े हैं। इसलिए आप बहुत खुश मत होना कि आपके बच्चे उस तरह बेचैन नहीं हैं। वह बच्चों की बेचैनी एक सौभाग्य का लक्षण है। वह आने वाली एक अदभुत क्रांति के पूर्व की रेस्टलेसनेस है। वह बहुत अदभुत है। जिस दिन हमारे बच्चे भी हिप्पी और बीटल और बीटनिक होने की स्थिति में पहुंचेंगे, उस दिन सौभाग्य की बात है! हिप्पी और बीटल की प्रशंसा नहीं कर रहा हूं। वह आने वाले परिवर्तन का प्रारंभिक चरण है। उपद्रव है वह पहला। जो होगा। और बिल्कुल जरूरी है।

और इसके पहले आर्थिक तरक्की जरूरी है?

एकदम जरूरी है, एकदम जरूरी है। और इसलिए मैं त्याग-व्याग का पक्षपाती नहीं हूं। क्योंकि त्यागवादी कभी आर्थिक तरक्की में विश्वास नहीं करते।

सो यू आर फॉर एन आर्गनाइज्ड मूवमेंट फॉर दि इकोनॉमिक बेटरमेंट ऑफ मैन? बिकाज यू हैव डिक्लेयर्ड योरसेल्फ अगेंस्ट आल दि आर्गनाइज्ड मूवमेंट्स। सो डू यू प्रपोज ए मूवमेंट फॉर इकोनॉमिक रि-जेनेरेशन ऑर रिबेलियन फॉर इकोनॉमिक रि-जेनेरेशन? आई सपोज यू डू दैट।

मैं आर्गनाइज्ड मूवमेंट के खिलाफ हूं, मूवमेंट के खिलाफ नहीं हूं। और जब भी कोई मूवमेंट आर्गनाइज्ड होता है तब वह मूवमेंट नहीं रह जाता, वेस्टेड इंट्रेस्ट हो जाता है फौरन। मूवमेंट होना चाहिए। सारे मुल्क के चित्त में एक लहर होनी चाहिए, एक आंदोलन होना चाहिए। उस आंदोलन से चीजें निकलनी चाहिए।

लेकिन जैसे ही आर्गनाइज्ड हुआ, वैसे ही एक छोटा सेक्शन का हिस्सा हो जाता है बंधा हुआ। और एक माइनारिटी पूरी मेजारिटी पर अपने को थोपने की कोशिश करती है। जब भी कोई मूवमेंट आर्गनाइज्ड होगा, तो आर्गनाइज्ड होने से माइनारिटी का हो जाएगा और मेजारिटी पर अपने को थोपने की कोशिश करेगा। तब वायलेंस पैदा होगी। क्योंकि माइनारिटी जब भी मेजारिटी को जबरदस्ती बदलने की कोशिश करेगी तो वायलेंस अनिवार्य हो जाएगी।

मेरी मान्यता यह है कि मूवमेंट डिफ्यूज्ड होना चाहिए, फैलना चाहिए। विचार-विचार में गहरा हो जाना चाहिए। और जब पूरा मुल्क एक विचार को राजी हो जाए, तो बिना किसी बहुत आर्गनाइजेशन के चीजें ऐसे बदल जाती हैं...

विकेंद्रित समाज रचना और विकेंद्रित समाज...

नहीं, विकेंद्रित समाज रचना से नहीं, विकेंद्रित समाज आंदोलन। इन दोनों बातों में फर्क है।

यह बात विनोबा जी ने और जयप्रकाश जी ने कही है, तो आप इसका समर्थन करेंगे?

न-न, मैं किसी का नाम लेकर समर्थन नहीं करता। क्योंकि उससे और पच्चीस बातें वे कह रहे हैं, जिनका मैं जानी दुश्मन हूं। मैं किसी का नाम लेकर समर्थन नहीं करता हूं।

ओशो, यू हैव बीन टार्किंग ऑफ टोटेलिटी। एंड एनी फॉर्म ऑफ टोटेलिटी इ.ज एन आर्गनाइज्ड मूवमेंट। तो आप यह जो कहते हैं यह कंट्राडिक्शन इन टर्म्स है। व्हेन यू से यू हैव ए मूवमेंट, एंड नो आर्गनाइजेशन।

हां-हां, जरूर कंट्राडिक्शन है।

यू टाक ऑफ टोटेलिटी। यू कांट हैव डिफ्यूज्ड मूवमेंट एट दि सेम टाइम। यह जो डिफ्यूज्ड मूवमेंट है इसको एक सूत्र में बांधने की कोशिश कैसे करेंगे आप?

इसे थोड़ा सोचें। असल में, आर्गनाइजेशन का मतलब क्या होता है? आर्गनाइजेशन का मतलब यह होता है कि एक विचार के लोग, एक समाज की रचना लाने की कल्पना करने वाले लोग इकट्ठे हो जाएं। ये इकट्ठे होकर एक आइडियालॉजी के पैटर्न को समाज के ऊपर बिठाने की कोशिश करें।

मेरा मानना यह है कि समाज के ऊपर कोई बहुत फिक्स्ड पैटर्न बिठालना खतरनाक है। क्योंकि समाज रोज आगे बढ़ जाता है; फिक्स्ड पैटर्न हमेशा पीछे पड़ जाता है। वह ऐसे ही जैसे एक बच्चे को हमने पाजामा पहना दिया। अब बच्चा तो रोज आगे बढ़ता चला जाता है, पाजामा रोज छोटा पड़ता चला जाता है। रोज

जरूरत होती है कि पाजामा बड़ा हो। लेकिन वे जो पाजामे के आर्गनाइज करने वाले लोग थे, वे कहते हैं कि यही पाजामा हमने तय किया था, इसी पाजामे को पहनाए रखना है। बच्चा बड़ा होता है, पाजामा छोटा पड़ जाता है।

सब आर्गनाइजेशन, जितने ज्यादा आर्गनाइज्ड होंगे, उतने ही ज्यादा फिक्स्ड और डेड हो जाते हैं। एक फ्लूडिटी चाहिए। और फ्लूडिटी का मतलब यह है कि--इसलिए मैं कहता हूं मूवमेंट, आर्गनाइजेशन नहीं। मूवमेंट चाहिए। हालांकि...

देअर मे बी मेनी मूवमेंट्स एंड पीपुल विल एक्सेप्ट दि मूवमेंट दैट दे वुड लाइक। आर नॉट यू अफ्रेड ऑफ दिस आउटकम?

न, न, न। मैं नहीं हूं अफ्रेड, मैं नहीं हूं अफ्रेड। जो मुझे गलत दिखता है वह मैं कह रहा हूं। अगर लोगों को वही ठीक लगता है तो वे करेंगे। यह सवाल नहीं है।

आपकी जो बात है डिफ्यूज्ड मूवमेंट की, इट विल क्रिएट केऑस!

हां, मैं यह चाहता हूं। और मैं यह कहता हूं आपसे कि चूंकि अब तक मनुष्य-समाज ने केऑस पैदा करने की हिम्मत नहीं की इसलिए मनुष्य-समाज पैदा नहीं हो सका। केऑस की हिम्मत चाहिए। क्योंकि आउट ऑफ केऑस क्रिएशन इ.ज बॉर्न। मेरी अपनी दृष्टि यह है।

तो मैं तो चाहता हूं कि इस मुल्क का दिमाग एक बार केऑटिक हो जाए। केऑटिक होने का मतलब हैः सोचने वाला। केऑटिक होने का मतलब हैः संदेह करने वाला। केऑटिक होने का मतलब हैः प्रश्न पूछने वाला। और जो सारे फिक्स्ड पैटर्न हैं हजारों साल के वे सब ढीले पड़ जाएं, एक लूजनेस आ जाए। और हम सोचने लगें, और एक गति आ जाए, और एक बहाव आ जाए।

लेकिन उसके बाद क्या होगा?

उसके बाद की चिंता नहीं इसलिए मैं करता हूं, नहीं इसलिए करता हूं कि सोच-विचारशील समाज निरंतर चीजों को फेस करता है और उनके सॉल्युशंस निकालता है। सॉल्युशंस फिक्स्ड देने की कोई जरूरत नहीं है। दो रास्ते हैं। या तो हम आपको बताएं कि बाएं जाएं और दस कदम चल कर ग्यारहवें कदम पर दाएं मुड़ें, वहीं दरवाजा है। एक तो रास्ता यह है। दूसरा रास्ता यह है कि हम आपको आंख से देखने की कला सिखाएं और कहें कि आप देखें! और जहां रास्ता आपको मिले, आप उससे निकलें। रास्ता और दरवाजा आपकी खुली आंख से दिखाई पड़ेगा।

मनःस्थिति अब तक जो रही दुनिया में वह यह थी कि हम लोगों को फिक्स्ड फार्मूला दे दें। आर्गनाइज्ड रिलीजन दे दें। आर्गनाइज्ड पार्टी दे दें। और लोगों को एक आइडियालॉजी दे दें, जिससे वे चलें। लेकिन लोगों को एक मस्तिष्क न दे दें जिससे कि वे सोचें और चलें। इन दोनों में फर्क है। तो मेरी जो चेष्टा है वह यह है कि आपके पास सोचने वाला, हमारे पास सोचने वाला मस्तिष्क हो। समस्याएं आएंगी, हम फेस करेंगे, और जो हल

निकलेगा वह हम जीएंगे। लेकिन हम कोई फिक्स्ड सॉल्युशन पहले से लेकर चलते नहीं। और हम तय करके नहीं चलते कि यह रेडीमेड आंसर हमारे पास है और हम हर समस्या में इसको लागू करेंगे।

अब तक वही हुआ। मुसलमान के पास रेडीमेड आंसर है; हिंदू के पास रेडीमेड आंसर है; कम्युनिस्ट के पास रेडीमेड आंसर है; सबके पास रेडीमेड आंसर है। वह आंसर हमेशा पीछे पड़ जाता है, जिंदगी रोज बदल जाती है। इसलिए हमारे पास नये सत्य को, नई समस्या को देखने वाला चित्त चाहिए, माइंड चाहिए। और वह एक मूवमेंट होगा, वह एक गति होगी, वह एक फिक्स्ड चीज नहीं हो सकती। लेकिन अब तक यही हुआ है।

और आप जो कहते हैं वह भी ठीक कहते हैं कि यह बात करनी बहुत कठिन है। असल में, जो भी सही है उसे करना हमेशा कठिन है।

आपके आस-पास ही चालू हो गया है मूवमेंट। यू योरसेल्फ हैज क्रिएटेड ए मूवमेंट--एन आर्गनाइज्ड मूवमेंट--जीवन जागृति केंद्र ऑर समथिंग लाइक दैट!

जरा भी नहीं। वह मूवमेंट भी नहीं है और आर्गनाइज्ड भी नहीं है, दोनों बातें नहीं हैं।

इट इ.ज आर्गनाइज्ड!

न, आप जरा देखिए न। इसको थोड़ा समझें कि वह कैसे आर्गनाइज्ड नहीं है।

आप चाहते नहीं हैं, लेकिन वे तो आपके चेले ही बन रहे हैं!

वह उनकी गलती होगी। और नासमझी जैसे ही समझ में आएगी, भाग जाएंगे। रोज बहुत से भाग जाते हैं। मैं किसी का गुरु नहीं हूं, इतना तय है। कोई मेरा चेला बना हो, वह उसकी गलती है। और मैं उसको डिसइल्यूजन करने की पूरी चेष्टा करता रहूंगा। अब कोई बिल्कुल ही अंधा हो तो बात अलग है।

मेरा कोई आर्गनाइज्ड मूवमेंट नहीं है। न मैं उसका पक्षपाती हूं। वह जो भी है बिल्कुल ही एक जिसको कामचलाऊ इंस्टीट्यूशन कहें, कि वे किताब छाप लेते हैं, किताब बेच देते हैं, किताब पहुंचा देते हैं, इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है।

तो पोलिटिकल प्रॉब्लम्स के बारे में भी ऐसा ही कुछ करना तो पड़ेगा न!

इंस्टीट्यूशंस होंगी। मैं मानता हूं कि इंस्टीट्यूशंस होंगी। इंस्टीट्यूशन अलग बात है, आर्गनाइजेशन अलग बात है। रेलवे है, वह एक इंस्टीट्यूशन है। वह कोई आर्गनाइजेशन नहीं है। पोस्ट आफिस है...

जो लोग आपको श्रद्धा से देख कर...

वे बड़ी गलती में हैं, वे बड़ी गलती में हैं। क्योंकि मैं सब तरह की श्रद्धा उखाड़ने का पक्षपाती हूं। अब यह उनकी भूल है। और पुरानी आदत की वजह से भूल है। वे जिन गुरुओं के पास पहले रहे, उन्होंने श्रद्धा सिखाई। उसी तरह वे मेरे पास आ गए हैं। ऊपर की बातें मेरी सुनते हैं, लेकिन भीतर का दिमाग वही का वही है। तो मेरा पैर भी छू लेते हैं, मुझे भी गुरु मान लेते हैं। लेकिन मुझे मान नहीं सकेंगे, क्योंकि मैं गुरु गड़बड़ हूं। मैं चौबीस घंटे... बहुत मुश्किल है उनको मानना। बहुत मुश्किल है।

ओशो, आपने और धर्मों से तुलना करके यह कहा कि ऐसा चित्त नहीं रहा इस देश में। एक बहुत बड़े ऐतिहासिक तथ्य को आप नजरअंदाज कर गए। इस मायने में कि एको, द्वितीयो नास्ति का जो रूप चला था, आज भी इतना वैविध्य है इस देश के चेतन में कि तैंतीस करोड़ देवता हैं। जब कि एक किताब, एक पैगंबर; एक बाइबिल, एक क्राइस्ट पर विश्वास करने वाले एक ही रास्ते पर चले। इस देश में आप राम के उपासक भी पाएंगे, कोई विष्णु का उपासक है। राम के भी निराकार और साकार वगैरह। तो इस देश में तो हमेशा आजादी रही सोचने की।

इसे थोड़ा समझिए, इसे थोड़ा समझिए। इस देश में सोचने की आजादी नहीं रही, बल्कि सोचने के बंधने के लिए कई कारागृह रहे, एक कारागृह नहीं रहा।

एक गांव में एक जेल है और एक गांव में दस जेल हैं। दस जेल वाला कहता हैः हमारे यहां बड़ी आजादी है, आप किसी भी जेल में चले जाइए। उस गांव में आजादी नहीं, उसमें एक ही जेल है।

देखिए तर्क और वाकचातुर्य में अंतर है।

यह तो तय कौन करेगा कि वाकचातुर्य कौन कर रहा है और तर्क कौन कर रहा है? यह कौन तय करेगा?

यह वक्त तय करेगा।

हां, यह तो वक्त तय करेगा। यह जो मैं कह रहा हूं, हिंदुस्तान में भी माइंड वही है, कारागृह बहुत हैं। कारागृह बहुत होने से स्वतंत्रता का भ्रम पैदा होता है। और ऐसा लगता है कि कोई राम को पूज रहा है, कोई कृष्ण को पूज रहा है, कोई बुद्ध को, कोई महावीर को, इसलिए बहुत पूजा है, इसलिए बड़ी स्वतंत्रता है।

लेकिन वह जो पूजा करने वाले का चित्त है, वह वही का वही है। वह किसको पूज रहा है, यह बिल्कुल मीनिंगलेस है। वह पूज रहा है, यही बंधन है। मेरा जो जोर है वह इस पर नहीं है कि आप किसको पूज रहे हैं। मेरा जोर है कि आप पूज रहे हैं। पूजने की जो हमारी वृत्ति है, वह वृत्ति कारागृह पैदा करती है। कितने कारागृह हैं, यह सवाल नहीं है।

डिफाई करने वाले भी थे। चार्वाक भी थे।

बिल्कुल थे। लेकिन इस मुल्क के चित्त में उनको कोई जगह नहीं मिल सकी। आप जो कहते हैं न कि चार्वाक भी थे, वह मैं कहता हूं।

दि फैक्ट दैट दीज पीपुल वर अलाउड टु सरवाइव इन दिस कंट्री, इंस्पाइट ऑफ समव्हाट टरमॉयल एंड अपहीवल, शोज दैट----

इस पर थोड़ा बात करें। पहली तो बात यह है कि मैं यह नहीं कह रहा हूं कि हिंदुस्तान में ऐसे कोई लोग ही पैदा नहीं हुए जिन्होंने बगावत की बात न की हो। हिंदुस्तान में ऐसे लोग पैदा हुए। लेकिन कभी भी हिंदुस्तान की मेन करंट वे नहीं बने, न बन सके। और जब उनके नाम को आदर हिंदुस्तान ने दिया, तो उन आदमियों की पूरी शक्ल बदल कर फिर मेन करंट में उनको सम्मिलित किया। नहीं तो वे सम्मिलित नहीं हुए।

जैसे चार्वाक हुआ। लेकिन चार्वाक की चिंतना की इस मुल्क में कोई जड़ें नहीं जम सकीं, इस मुल्क की प्रतिभा में कहीं जड़ें... । अगर हिंदुस्तान में चार्वाक की जड़ें जम गई होतीं, तो जो पश्चिम में आज हो सका वह हिंदुस्तान में तीन हजार साल पहले हो गया होता। इतना सारा विज्ञान हमने पैदा कर लिया होता कभी भी। क्योंकि पश्चिम जो कुछ कर सका वह वहां मैटीरियलिज्म की एक जड़ जम सकी और इसलिए कर सका, नहीं तो कभी नहीं कर सकता था।

हिंदुस्तान में चार्वाक की बात तो ऐसे हट गई कि आज चार्वाक की एक किताब उपलब्ध होनी संभव नहीं है। चार्वाक का एक शास्त्र उपलब्ध नहीं है। चार्वाक के संबंध में जो हम जानते हैं वह चार्वाक के दुश्मनों ने अपनी किताबों में जो गालियां दी हैं उसी के द्वारा जानते हैं। और वह जानना ऐसा ही है कि जैसे मेरे संबंध में आपके गुजराती के अखबार जो कहते हैं, अगर हजार साल बाद बच जाए, और मेरे संबंध में जानने के लिए कुल जमा उतनी ही चीज बच जाए, तो मेरे बाबत जो जानकारी होगी, वही जानकारी चार्वाक के बाबत बाकी रह गई है।

आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न?

हिंदुस्तान में बुद्ध ने भी बगावत की है, महावीर ने भी बगावत की है, और आप कहते हैं कि दोनों बच गए। आप थोड़ा सोचिए! बुद्ध की बगावत इतनी बड़ी थी, लेकिन कितने बौद्ध हिंदुस्तान में बच गए? सच्चाई यह है कि हिंदुस्तान को छोड़ कर सब जगह बौद्ध हैं, अगर अंबेदकर के झूठे बौद्धों को छा.ेड दिया जाए। हिंदुस्तान को छोड़ कर सब जगह बौद्ध हैं, हिंदुस्तान भर में बौद्ध नहीं हैं। बुद्ध का देश भर बौद्धों से खाली हो गया। कितने बौद्धों की हत्या आपने की है उसका हिसाब रखा है कुछ?

बुद्धिज्म वहां कनवर्ट हो गया है, वहां बुद्धिज्म नहीं है। वहां अब जापान में बुद्धिज्म...

मैं उसकी बात नहीं कर रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि आपके मुल्क में आप कह रहे हैं कि बच गए। जैनियों की कितनी संख्या है आप सोचते हैं? कितने जैनी बच गए हैं? महावीर और उनके चौबीस तीर्थंकरों की लंबी परंपरा के बाद हिंदुस्तान में जैनियों की कितनी संख्या है? बीस-पच्चीस लाख से ज्यादा उनकी संख्या न होगी। और बीस-पच्चीस लाख जैनी इसलिए नहीं बच सके कि वे जैनी हैं, बल्कि जैनियों ने हर हालत में अपने को हिंदुओं का पूरी तरह एक हिस्सा बना लिया। और इसलिए बच सके। और उनके बच

जाने का दूसरा कारण यह है कि जैनियों ने पैसा इकट्ठा किया और पैसे की वजह से बच सके। हिंदुस्तान में जैनियों का बच जाना कोई जैन की क्रांति का बच जाना नहीं है।

हिंदू धर्म एकोमोडेटिव रहा है...

मैं यह कह ही नहीं रहा, हिंदू धर्म के लिए नहीं कह रहा। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि आप जो यह कहते हैं कि बड़ी कोई स्वतंत्रता रह गई हो, उस भ्रम में मत रहना आप, वैसी कोई स्वतंत्रता कभी नहीं रही है। अभी वैसी स्वतंत्रता होनी चाहिए, इसकी हम चेष्टा करें। और जो लोग कहते हैं कि रही है, वे होनी चाहिए के दुश्मन सिद्ध होते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, वह है ही। इसलिए कुछ होनी चाहिए का सवाल नहीं है। मैं जब यह जोर देता हूं कि नहीं रही है, तो मेरा मतलब यह है कि वह रहनी चाहिए, वह होनी चाहिए।

आप हैरान होंगे, पश्चिम में कितनी फिलॉसफीज हैं, आप कोई हिसाब लगा सकते हैं! आप अपनी बातें करते हैं, लेकिन आपकी नौ फिलॉसफीज के बंधे हुए कठघरे हैं। कोई दसवीं फिलॉसफी हिंदुस्तान में पैदा नहीं हुई। और नौ फिलॉसफीज के कठघरे बिल्कुल तैयार हैं, उसमें से आप चुनाव कर लें। पश्चिम में कोई कठघरा नहीं है। पश्चिम में जितने फिलॉसफर हैं उतनी फिलॉसफीज हैं। और इसको मैं कहूंगा स्वतंत्रता। इसका अर्थ होगा कि चिंतन मुक्त रहा है। साक्रेटीज का अपना चिंतन है, प्लेटो का अपना है, हाइडेगर का अपना है, या सार्त्र का अपना है। लेकिन हिंदुस्तान में ऐसा मामला नहीं है। यहां मामला तय है। यहां नौ कैटेगरीज बंटी हुई हैं। और उन बंटे हुए में...

अभी भी मुझसे लोग पूछते हैं आकर, कोई पंडित आता है तो मुझसे पूछता है, पहले आप यह बताइए कि आप किस सिस्टम को मानते हैं? क्योंकि यह सवाल ही नहीं है कि कोई सिस्टम के बाहर हो सकता है, नौ सिस्टम में किसी को होना चाहिए। वह न्याय का हो, वैशेषिक का हो, सांख्य का हो, वह किसी का हो, वह सिस्टम में होना चाहिए।

इस देश को स्वतंत्र चिंतन सीखना पड़ेगा। वह अभी रहा नहीं है। हां, कुछ चिनगारियां हमेशा प्रकट हुई हैं। उनको हमने बुझा दिया। हम बुझाने वाले हैं उन चिनगारियों को। और हम आज भी बुझाने की पूरी कोशिश करते हैं। और आप जो कहते हैं...

अगर उन चिनगारियों में कुछ जोर न हो तो वे बुझ जाएंगी खुद ही!

नहीं, इसे समझें। यह जो कहते हैं कि वे चिनगारियां हमने बुझाई नहीं, वे कमजोर थीं इसलिए बुझ गईं। वे अभी तक बुझी नहीं हैं। तुमने राख डाली है, वे कमजोर होतीं तो खतम हो गई होतीं। वे खतम नहीं हो गई हैं, वे चिनगारियां तो हैं। लेकिन तुमने राख डाली है। भीड़ ने राख डाली है। वे दबी हुई पड़ी हैं। और किसी भी दिन कोई उघाड़े तो हिंदुस्तान का चार्वाक फिर जिंदा हो जाएगा, हिंदुस्तान का बुद्ध फिर जिंदा हो जाएगा। वह हिंदुस्तान की क्रांति फिर जिंदा हो सकती है।

भीड़ ज्यादा से ज्यादा जो कर सकती है, बुझाने का मतलब बुझाना नहीं होता। बुझाने का कुल मतलब इतना होता है कि भीड़ उस पर राख डाल सकती है। और राख बहुत बुरी तरह डाली है। उसको आज खोजना भी मुश्किल है।

तंत्र ने इतना काम किया हिंदुस्तान में, लेकिन हमको सेक्स के बाबत फ्रायड से सीखना पड़ रहा है। इससे ज्यादा दुखद कुछ नहीं हो सकता। फ्रायड बच्चा है हिंदुस्तान के तांत्रिकों के मुकाबले। और तांत्रिकों ने जो सूत्र आज से दो हजार साल पहले खोज लिए, वह हमको फ्रायड से, उसकी पाठशाला में जाकर... हिंदुस्तान में अब किसी को मनोविज्ञान सीखना हो तो जर्मनी जा रहा है, अमेरिका जा रहा है। और ये सारे मनोविज्ञान के सूत्र दो हजार पहले तांत्रिकों ने खोज लिए। लेकिन हिंदुस्तान की भीड़ ने बिल्कुल राख डाल दी उस पर। वह उनका पता लगना मुश्किल हो गया है कि क्या है। किस तरह राख डाली है, इसका हिसाब नहीं है। अब तुम कहोगे कि कैसे?

भोज ने एक लाख तांत्रिकों को मरवाया। अकेले भोज ने एक लाख तांत्रिकों की हत्या की।

पश्चिम में भी प्रोसिक्यूशन हुआ था।

हुआ है, पश्चिम में भी आप जैसे लोग रहे हैं, उन्हीं बुद्धुओं की वजह से तो आगे मामला बढ़ नहीं पाता। हम जैसे लोग रहे हैं, उन्हीं की वजह से तो पश्चिम में भी अटकाव है। लेकिन पश्चिम में इधर पिछले...

आप जो यह कहते हैं कि आप जैसे...

न, न, न! आप नहीं समझे। मैं जो कह रहा हूं, आपसे नहीं कह रहा हूं। और आप जो सवाल उठा रहे हैं, वह आप ही नहीं उठा रहे हैं, यह जो हमारा माइंड है... जब मैं कह रहा हूं आप, तो आप यह मत सोचना कि आपसे व्यक्तिगत रूप से कह रहा हूं। आपसे क्या कहने का सवाल है! जब मैं आपसे कह रहा हूं, आपसे फिर भी नहीं कह रहा हूं। यह जो हमारा माइंड रहा है...

अगर आपका कोई ख्याल ऐसा है जिसके साथ हम सहमत नहीं हैं, वह भी हम रेज करेंगे। यू माइट नॉट बी यूज्ड टु इट। यू माइट बी यूज्ड टु योर कनफॉरमिस्ट डिसाइपल्स ऑर भक्त...

न, न, न, जरा भी नहीं। मेरा कोई भक्त नहीं है, और मैं आप ही जैसे लोगों से यूज्ड हूं। मेरा कोई भक्त नहीं है।

यू बिलीव इन फ्रीडम ऑफ थॉट एंड फ्रीडम ऑफ एक्शन, सो नेचरली अदर्स हैव दि सेम राइट...

मैं यह मान भी नहीं रहा कि आप जो कह रहे हैं वह कोई आपकी दलील है, यह मैं मान ही नहीं रहा। मैं समझ ही रहा हूं कि कोई जो आप पूछ रहे हैं वह कोई आपका मंतव्य है, ऐसा नहीं मान रहा हूं। और इसलिए जो मैं "आपका" शब्द उपयोग कर रहा हूं वह आपके लिए कर ही नहीं रहा हूं।

हम जो बात कर रहे हैं वह दो विचार के लिए बात कर रहे हैं। और जब मैं कह रहा हूं आप, तो मैं आपसे कह दूं कि उससे मेरा मतलब है कि वह जो हमारा माइंड है। उसमें मैं सम्मिलित हूं। वह जो भारतीय चित्त है, उसकी मैं बात कर रहा हूं। और आप भी जो सवाल उठा रहे हैं तो वे सवाल आपके नहीं हैं। वे आपके हो भी

सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं, इससे कोई सवाल नहीं है। यानी वह इररेलेवेंट है बात, आपका उससे कोई संबंध नहीं है। इसलिए उसको व्यक्तिगत बात नहीं ले लेंगे। जब मैं आपसे बात कर रहा हूं तो आपसे बात करनी पड़ रही है, लेकिन मैं बात कर रहा हूं पूरे भारतीय चित्त की।

वह जो भारतीय चित्त है, वैसा चित्त पश्चिम में भी रहा है। उस चित्त ने वहां भी बाधा डाली है, वह बाधा डाल रहा है। वैसा गुरु वहां भी है, वैसा पोप वहां भी है, वैसा धार्मिक आदमी वहां भी है, वैसा संप्रदाय वहां भी है, वह बाधा डाल रहा है। उसने बाधा पूरी तरह डाली है, जितनी वह डाल सकता था। उस बाधा के बावजूद पश्चिम में काम हुआ है। हमारी बाधा के बावजूद इस देश में काम हो सके, उसके लिए हमको और आपको चेष्टा करनी है कि वह इस देश में भी उसके बावजूद काम हो सके।

और जब आप यह कहते हैं कि आप प्रश्न मुझसे उठा रहे हैं, तो मैं तो चाहता ही हूं, मेरी पूरी चेष्टा ही यह है कि मैं इस तरह की बात करूं कि हजार प्रश्न उठ जाएं। प्रश्न मूल्यवान है, उत्तर की मुझे चिंता नहीं है। कोई मेरा उत्तर आप स्वीकार करें, इसकी तो जरा भी फिक्र नहीं है। क्योंकि मेरा कोई उत्तर नहीं है। और जो भी मैं कह रहा हूं, और उतने जोर से जो कहता हूं, उसके जोर के पीछे भी कारण यह नहीं है कि कोई फालोइंग या कोई भक्त को मुझे खोज लेना है। जोर से कहने का कुल कारण इतना है कि उतना ही आपको उत्तेजित कर सकूं और आप और जोर से पूछ सकें। हम लड़ सकें ठीक से। और वह लड़ाई बिल्कुल सीधी हो सके और सिनसियर हो सके। हिंदुस्तान में तो लड़ाई भी सीधी नहीं होती। अगर किसी से लड़ना है, तो लड़ने में भी एक मजा नहीं रह गया, आनंद नहीं रह गया। वह फौरन व्यक्तिगत हो जाती है।

आई थिंक साईंबाबा इ.ज डूइंग दि सेम थिंग एज यू आर डूइंग हियर। एम आई राइट?

आप मुझे बताइए क्या कर रहे हैं वे। मुझे पता नहीं क्या कहते हैं आप।

जो उपदेश वे दे रहे हैं, वह आप भी दे रहे हैं। चमत्कार की बात अलग है। आप जो चाहते हैं, वह भी साईंबाबा चाहते हैं। वैचारिक-क्रांति वे भी समझते हैं कि वैचारिक-क्रांति फैलाना चाहता हूं।

नहीं, अगर वैचारिक-क्रांति लाना चाहते हैं तो चमत्कार नहीं दिखा सकते।

ओशो, एक स्पष्टीकरण। आपने कहा कि बौद्ध और जो कुछ और धर्म हुए हैं, दे वर नेवर अलाउड टु बिकम दि मेन स्ट्रीम, लैटर दे वर मर्ज्ड इन बिगर स्ट्रीम। बाद में ऐसा हुआ। आप शायद एक तथ्य से अवगत जरूर होंगे कि जब राज्य-शक्ति के प्रयोग के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ इस देश में, तो उसका जो निराकरण और उन्मूलन किया है, वह आदिशंकर ने शास्त्रार्थ में किया था, न कि शक्ति द्वारा।

तो इस सबको कौन मना कर रहा है? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप शास्त्रार्थ करने में कमजोर रहे हैं। लेकिन आप शास्त्रार्थ करते रहे हैं, इस मुल्क में डायलाग कभी नहीं हुआ। शास्त्रार्थ का मतलब आप समझते हैं? शास्त्रार्थ का मतलब होता हैः शास्त्र का क्या अर्थ है? आप इसको थोड़ा समझ लेना। इस मुल्क में विवाद जो होते रहे हैं, वे यह होते रहे हैं कि गीता की इस पंक्ति का क्या अर्थ है? तुम क्या अर्थ करते हो, हम क्या करते हैं

अर्थ, यह झगड़ा है। लेकिन यह झगड़ा नहीं है कि गीता की पंक्ति में सत्य है या नहीं है। यह झगड़ा नहीं है। गीता की पंक्ति का अर्थ क्या है, वेद की पंक्ति का अर्थ क्या है, उपनिषद का अर्थ क्या है।

शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ किया हुआ है, लेकिन हिंदुस्तान में वह साक्रेटिक डायलाग पैदा नहीं हो सका। शास्त्रार्थ तो हुआ है। और इन दोनों में बुनियादी फर्क है।

डायलाग इ.ज आलवेज इन ए कनवरसेशन इन दिस कंट्री।

न-न, यह सवाल नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि इस मुल्क ने एक बात मान रखी है कि शास्त्रों में सत्य है। अब सवाल जो ज्यादा से ज्यादा रह गया वह यह है कि इंटरप्रिटेशन क्या होशास्त्र का। तोझगड़ा जो हमारा चला है तीन हजार साल तक वह यह चला है कि शास्त्र का अर्थ क्या है? शास्त्र सत्य है, यह तो ठीक है।

तो उसको डिफाई करने वाले भी हैं।

मैं मना नहीं कर रहा। वह तो मैंने कहा कि डिफाई करने वाले हैं। लेकिन वे हमारी मेन करंट नहीं हैं।

गैलीलियो के जैसे उसको जलाया नहीं गया इधर।

आप गलती में हैं। तो आपको फिर इतिहास का पूरा पता नहीं है। दक्षिण में इतने बौद्ध भिक्षुओं को आग में जलाया है और कड़ाहों में जलाया है, जिसका हिसाब नहीं है। लेकिन कौन झगड़ा उठाए!

इतिहास नहीं मिलता इसका लेकिन।

इसको थोड़ा खोज-बीन करिए। इसको थोड़ा खोज-बीन करिए। इतिहास तो इस मुल्क में ऐसा झूठ है, क्योंकि इतिहास कौन बना रहा है इस मुल्क में? इतिहास कौन बना रहा है? चार्वाक का इतिहास कौन बना रहा है? वह बना रहा है जो चार्वाक का दुश्मन है। यहां इतिहास कौन बना रहा है? यहां इतिहास जो बना रहा है, जो ब्राह्मण और जो...

आप जो कहते हैं यह तो कम्पेरेटिव पिक्चर है।

मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि हमारे मुल्क का जो इतिहास हम कहते हैं, वह इतिहास इतने असत्यों का भंडार हो गया है... अभी आपने ओक की किताब के बाबत सुना होगा, जिसमें कहा कि ताजमहल राजपूत महल है। यह हमारी कल्पना के ही बाहर है। क्योंकि मुसलमान इतिहास लिख गए। और इतिहास लिख गए और ताजमहल को बना गए कि वह कब्र है मुमताज की।

अब एक आदमी ने इतने तथ्य इकट्ठे किए हैं कि हम सोच ही नहीं सकते थे कि इतने दिन से हमारे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय और सारे हिस्ट्री के प्रोफेसर्स पढ़ाए चले जा रहे हैं कि ताजमहल कब्र है। और एक आदमी खोज कर सारे तथ्य लाया और वह कहता है, यह कब्र है ही नहीं और ताजमहल बनाया ही नहीं मुमताज के पति ने। और यह तो चार सौ, पांच सौ वर्ष पहले से राजपूत महल था। और उस महल को जबरदस्ती कब्जा करके कब्र बना दिया। और उसको सिर्फ ऊपर थोड़ा-बहुत टीम-टाम कर दी, बदलाहट कर दी और वह हो गया।

अब मजा यह है, ये आज तथ्य पूरे सामने हैं, हिंदुस्तान का कोई ऐतिहासिक उनका विरोध नहीं कर रहा है, लेकिन यूनिवर्सिटीज यही पढ़ाए चली जा रही हैं कि ताजमहल जो है वह मुसलमान महल है।

मजे की बात यह है कि हिंदुस्तान का एक महल मुश्किल से मुसलमान है। हिंदुस्तान के सब महल पुराने हैं और सब पर कब्जा करके उनको कनवर्ट कर दिया गया ऊपर से। हिंदुस्तान की एक मस्जिद मुसलमानों की बनाई हुई नहीं है। सब पुराने मंदिर हैं और मस्जिदें हो गईं। और इतिहास मुसलमानों ने लिखा, इसलिए इतिहास और ही है। अब उस इतिहास को बदलने का प्रॉब्लम हो गया है।

बौद्धों को जिन्होंने नष्ट किया जिन हिंदुओं ने, उन्होंने इतिहास लिखा। नष्ट होने वाला बचा नहीं इतिहास लिखने को। बड़े मजे की बात है कि हिंदुस्तान के इतने बौद्ध अचानक नदारद हो गए! एकदम विलीन हो गए! लेकिन कहीं-कहीं उल्लेख उपलब्ध हैं। लेकिन उन उल्लेखों को कौन इकट्ठा करे? वह हिंदू पंडित बैठा हुआ है, ब्राह्मण बैठा हुआ है सब जगह अड्डा जमाए हुए। उन उल्लेखों को कौन इकट्ठा करे? कौन खोजे?

हिंदुस्तान के तो पूरे इतिहास की, जैसे नेहरू ने किताब लिखी है, वह रि-डिस्कवरी नहीं है इंडिया की। होनी चाहिए अभी। वह बिल्कुल ही पुराना ही कथन फिर दोहरा दिया है नेहरू ने, उस किताब का नाम बिल्कुल गलत है। हिंदुस्तान का पुनआर्विष्कार होना चाहिए।

तो आप इसका जिक्र क्यों नहीं करते कि जब प्रियदर्शी, सम्राट अशोक जब प्रियदर्शी बन गया, उसने भी तो ब्राह्मणों पर अत्याचार किया।

बिल्कुल किया, वह भारतीय मन का हिस्सा है, कोई अशोक को मैं गैर-भारतीय थोड़े ही मानता हूं, उसको मैं गैर-भारतीय नहीं मानता। बौद्धों ने भी हिंदू जलाए होंगे।

लेकिन, ओशो, इस बारे में पर्याप्त तथ्य नहीं मिलते, जो आप कह रहे हैं। यह संभव है कि कभी किसी राजा ने इस देश में संघ शक्ति का प्रयोग कर दमन किया हो। पश्चिम में जरूर हुआ है। क्रिश्चिएंस ने किया, रोमन्स ने किया...

पश्चिम में बहुत हुआ है, बहुत हुआ है। लेकिन ये जो जितने तथ्य आप पश्चिम के दे पाते हैं, इसमें एक बात मैं आपसे कहूं। हमारा एक फायदा है इस मुल्क को कि न हमारे पास साफ इतिहास है और न तथ्य है। जैसे अगर पश्चिम की लड़कियों से अमेरिका में जाकर आज पूछा जाए कि कितनी लड़कियां शादी के पहले सेक्सुअल इंटरकोर्स से गुजरती हैं, तो आंकड़ा उपलब्ध हो जाता है। हिंदुस्तान की लड़कियों से आप पूछ लें, आंकड़ा उपलब्ध नहीं होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि लड़कियां नहीं गुजरतीं। लेकिन अमेरिका का आंकड़ा लेकर

हिंदुस्तान का संन्यासी चिल्लाएगा कि देखो, अमेरिका में लड़कियों की यह हालत है! हिंदुस्तान की तो लड़कियां बड़ी पवित्र हैं। क्योंकि आंकड़े नहीं हैं सिर्फ इसीलिए?

पश्चिम का इतिहास बहुत साफ-सुथरा है। पश्चिम ने इतिहास लिखा है। हमने इतिहास लिखा ही नहीं सिवाय पुराण के।

पश्चिम गुलाम नहीं रहा न!

गुलाम रहने का सवाल नहीं है, हिस्टारिक माइंड नहीं है हमारे पास। और उसका कारण है। और उसके कारण बहुत गहरे हैं। हिंदुस्तान का मानना यह है कि जो हो रहा है यह तो नाटक है, लीला है, माया है। इसको लिखने की क्या जरूरत है? यह तो कई बार हुआ है और कई बार होगा। राम कई बार पैदा हुए हैं और कई बार पैदा होंगे। तीर्थंकर कई बार पैदा हुए हैं और कई बार पैदा होंगे। यह अनंतकालीन रिपिटीशन है। इसको लिखने की जरूरत क्या है?

पश्चिम के सामने हिस्टारिक सेंस है। और उसकी वजह से इतिहास है।

माई पॉइंट इ.ज दैट वेरिअस फिलॉसफीज एंड वेरिअस रिलीजंस वर एलाउड टु एक्झिस्ट हियर। दिस कुड नॉट बी दि केस इन वेस्ट। मेनली फॉर दि रीजन दैट ओनली क्रिश्चिएनिटी हैज सरवाइव्ड।

समझा मैं, आपकी बात समझा। आपकी बात समझा। यह बात बिल्कुल ठीक है कि क्रिश्चिएनिटी ने जो कुछ किया है, वह हमसे कोई पीछे नहीं, हमसे ज्यादा है और आगे है। और जो अनाचार, जो अत्याचार और जो जबरदस्ती उन्होंने की है, वह हमसे ज्यादा है, कम नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमने यह सब नहीं किया है। हमारे पास आंकड़े नहीं हैं, इतिहास नहीं है, साफ स्थिति नहीं है।

वुड यू एग्री इफ आई से दैट योर थिंकिंग इ.ज लार्जली इनफ्लुएंस्ड बाइ एम.एन.राय?

इनफ्लुएंस तो जरा भी नहीं, लेकिन एम.एन.राय को मैं पसंद करता हूं और प्रेम करता हूं। बहुत पसंद करता हूं।

दे बेअर विद योर टाइप ऑफ कनविक्शन, व्हाइ डू यू नॉट ओपनली एडमिट इट?

नहीं-नहीं, ओपनली एडमिट करने का सवाल नहीं है। एम.एन.राय को मैं पसंद करता हूं। ढेर जगह मेरे विरोध हैं उनसे, ढेर जगह भिन्नता है। यानी वह तो वही की वही बात है। मैं जो कह रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मेरे ऊपर किसी का कोई प्रभाव नहीं है। यह तो असंभव है।

कृष्णमूर्ति के बारे में क्या है?

कृष्णमूर्ति को बहुत प्रेम करता हूं। उनसे बहुत सी बातों में बहुत राजी हूं। बहुत सी बातों में राजी नहीं हूं।

डू यू थिंक दैट दि फिलॉसाफिकल-आइडियालॉजिकल रेवोल्यूशन व्हिच यू वांट टु इस्टैब्लिश इन अवर कंट्री, कैन बी इस्टैब्लिश्ड बाइ प्लेटफार्म स्पीकिंग?

नहीं।

देन डोंट यू थिंक दैट योर प्लेटफार्म स्पीकिंग ऑर योर जीवन जागृति केंद्र इ.ज इन दि वेरी प्रोसेस व्हिच यू आर अपोजिंग एंड डिनाइंग? दि वेरी प्रोसेस ऑफ मेकिंग ए रिलीजन? दि वेरी प्रोसेस ऑफ आर्गनाइजेशन?

नहीं, कोई आर्गनाइजेशन...

बिकाज यू सेड जस्ट नाउ दैट थ्रू प्लेटफार्म स्पीकिंग नो रेवोल्यूशन इ.ज पासिबल इन अवर कंट्री। दैट आल्सो अगेन इ.ज एन ओपियम, व्हिच यू आर ट्राइंग टु अपोज इन अदर रिलीजंस। यू आर पुटिंग दि साइकल--एनादर ओपियम ऑफ प्लेटफार्म स्पीकिंग, व्हिच विल नॉट गिव एन आइडियालॉजिकल-फिलॉसाफिकल रेवोल्यूशन टु अवर कंट्री। इट विल ओनली गिव ए फाल्स सेंस ऑफ रेवोल्यूशन इन अवर कंट्री। नो रेवोल्यूशंस आर मेड लाइक दिस--बाइ स्पीकिंग ऑफ एन इंडिविजुअल।

फिर क्या ख्याल है आपका, कैसे होती हैं?

दैट इ.ज माइ क्वेश्चन!

हां, मैं यह आपसे कहना चाहता हूं, यह बात बिल्कुल सच है कि सिर्फ कोई बोलने से, किसी मंच से खड़े होकर बात समझा देने से क्रांतियां नहीं हो जाती हैं। लेकिन कोई ऐसी क्रांति नहीं हुई है कभी जो बोलने के बिना और बिना मंच के हो गई हो। यह भी ध्यान रख लेना आप। क्रांतियां सिर्फ मंच से बोलने से नहीं हो जाती हैं, यह बात बिल्कुल सच है। लेकिन कोई क्रांति बिना मंच के बोलने से हो गई हो, इस भ्रम में मत पड़ जाना।

बोलने के बाद उसको आर्गनाइज करना पड़ेगा न!

न, न, न! मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूं न, मैं उस क्रांति की बात कर रहा हूं जिसको आर्गनाइज नहीं करना है। वही मेरी क्रांति है। आपने आर्गनाइज किया, अब तक तो आर्गनाइज्ड क्रांतियां हुई हैं, इसलिए मैं मानता हूं कि वे पूरी क्रांतियां नहीं हो सकीं। कोई आर्गनाइज्ड क्रांति पूरी क्रांति नहीं हो सकती। आर्गनाइज्ड होते ही वह फिर जैसे ही आर्गनाइज्ड हुई, आर्गनाइज्ड होने की प्रोसेस में फिर जकड़ बन जाती है, फिर पैटर्न बन जाती है।

हो सकता है कि मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूं, वह कभी न हो सके। लेकिन इसकी कोई चिंता नहीं है बहुत कि वह हो ही जानी चाहिए। यह आग्रह फिर आर्गनाइजेशन बनता है। मुझे जो ठीक लगता है वह मैं कहता रहूंगा। किसी को ठीक लगेगा, जो होगा वह होता रहेगा। मेरी कोई अपेक्षाएं भी नहीं हैं कि वह हो ही जानी चाहिए।

लेकिन यह मेरा मानना है, अकेले बोलने से क्रांति नहीं होती, लेकिन बोले बिना भी क्रांति नहीं होती। और मेरी, जिस बात को मैं कह रहा हूं, वह चूंकि वैचारिक-क्रांति की बात है, मैं कोई न सरकार पर कब्जा कर लेने को उत्सुक हूं और न किसी संगठन को बना कर कोई मुल्क में खून-खराबा कर देने को उत्सुक हूं। मेरी उत्सुकता इतनी है कि आपका मस्तिष्क--हमारा मस्तिष्क कहना चाहिए, नहीं तो किसी को बुरा लग जाए--वह जो हमारा मस्तिष्क है, वह हमारा मस्तिष्क इतना जड़ हो गया है कि उसे सब जगह से हिला दिया जाए। अगर वह हिल जाता है तो मेरा काम पूरा हो जाता है। मेरे लिए क्रांति का इतना मतलब है।

नहीं, आपका जो यह धर्मांधता विरोधी जो यह मूवमेंट है, वह आप स्टेट्स में क्यों नहीं ले जाते?

उसे ले जाऊंगा, उसे ले जाऊंगा। आपको सहयोगी बनना पड़ेगा स्टेट में ले जाने के लिए। हां, उसे ले जाऊंगा।

ओशो, आपने एक वक्तव्य में यह कहा कुछ दिन पहले कि लड़कियों को लड़कों जैसा शिक्षण नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से लड़कियां भी लड़कों जैसी ही हो जाती हैं। सवाल यह है कि फिर कौन सा शिक्षण देना चाहिए? क्या प्रबंध किया जाए? और वह कौन निश्चित करेगा?

बढ़िया बात है। मैंने जो कहा कि लड़कों जैसा शिक्षण नहीं दिया जाना चाहिए, उसका मतलब यह नहीं है कि लड़कियों को केमिस्ट्री कोई दूसरे ढंग की केमिस्ट्री पढ़ाई जा सकती है या गणित कोई दूसरे ढंग का गणित पढ़ाया जा सकता है।

मैंने जो कहा वह मैंने यह कहा कि लड़कियों के पूरे शरीर की शिक्षा लड़कों से भिन्न होनी चाहिए। लड़कियों के वस्त्रों का आयोजन लड़कों से बिल्कुल भिन्न होना चाहिए। लड़कियों की जिंदगी में जो उन्हें सम्हालना है, जहां उन्हें जिंदगी को फैलाना है, जिस घर को उन्हें सम्हालना है, उस घर की पूरी शिक्षा होनी चाहिए। उस घर के लिए मां बनने की, पत्नी बनने की, सारी शिक्षा होनी चाहिए। क्योंकि हम जीवन के जो भी महत्वपूर्ण हिस्से हैं वे अशिक्षित छोड़ देते हैं। एक लड़की को कभी सिखाया ही नहीं जाता कि वह मां कैसे बने, पत्नी कैसे बने। बस मां-पत्नी बन जाती है वह। और तब एक उपद्रव होता है।

जो मेरा मतलब था वह कुल इतना था कि या तो हम यह समझ लें कि लड़के और लड़कियों का क्षेत्र एक है; तब तो फिर एक जैसी शिक्षा ठीक है। लेकिन लड़की को कुछ और विशेष भी करना है, जो लड़के को नहीं करना है। उसे घर का एक केंद्र बनना है। उसकी सारी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। वह लड़कों से भिन्न होगी।

और जो शिक्षाएं, जैसे कि कवायद है या परेड है या घुड़सवारी है, इस तरह की शिक्षाएं सिर्फ उन लड़कियों को मिलनी चाहिए जिनको युद्ध के मैदान पर जाना हो। लेकिन जिन लड़कियों को घर में जाना है,

उन लड़कियों को इन शिक्षाओं का कोई मतलब नहीं है। बल्कि ये सारी शिक्षाएं उनके, उनका जो लड़कीपन है, स्त्रैणता है, उसको थोड़ा क्षीण करने वाली सिद्ध होंगी।

यह सारा मनोवैज्ञानिकों को तय करना चाहिए। कौन तय करेगा, आप पूछते हैं। आज तो मनोविज्ञान की काफी खोज है, फेमिनिन साइकोलॉजी पर काफी काम है। यह तय होना चाहिए कि लड़कियों के लिए क्या उपयोगी होगा, जो उनको ज्यादा स्त्रैण बनाता हो। पुरुषों के लिए क्या उपयोगी होगा, जो उनको ज्यादा पुरुष बनाता हो। लड़कियां लड़कियां ज्यादा हों, पुरुष ज्यादा पुरुष हों, तो उनके जीवन में ज्यादा आकर्षण और ज्यादा आनंद होगा। उसके बाबत मैंने कहा था।

आप जो कहते हैं कि उसको घर का केंद्र, फेमिली का केंद्र बनना है, वह तो बनती ही है। ऐसी शिक्षा तो उसको घर में देते ही हैं।

कुछ नहीं मिल रही है। वह तो देख रहे हैं घर की क्या हालत है!

वह शिक्षा घर में दी जाती है। जब वह कालेज में या स्कूल में जाती है, तो उसके लिए अलग शिक्षा का प्रबंध आपने बताया था कि...

पूरा अलग करना पड़ेगा। घर में कुछ नहीं मिल रहा है, कुछ भी नहीं मिल पा रहा है। घर में कुछ भी नहीं मिल पा रहा है और परिवार बिल्कुल विकृत हुआ जा रहा है, विक्षिप्त हुआ जा रहा है।

तो उसका मतलब तो यही हुआ न कि जो परिवार की विकृति है वही हम पर हो रही है।

ठीक है न। उसके बाबत बात करेंगे।

तो फिर तो यह हुआ कि परिवार को सुधरना चाहिए।

बिल्कुल ही। मेरी तो सारी दृष्टि है परिवार के बाबत।

और आप जो कहते हैं कि लड़कियों को जो शिक्षण देना चाहिए उसके लिए मनोवैज्ञानिक समझ का उपयोग करना चाहिए, उसका अभ्यास करना चाहिए। लेकिन यह सब कौन करेगा? पढ़ेंगे नहीं तो यह सब कौन करेगा? यह सब कैसे होएगा?

वह हो रहा है। हमें दिखाई नहीं पड़ रहा। हम उसका प्रयोग भी नहीं कर रहे। वह हो रहा है, बहुत जोर से हो रहा है।

कहां हो रहा है? और कैसे प्रयोग किए जाएं?

आप अलग आ जाएं तो बात कर लूंगा। आप अलग आ जाएं, जरा लंबी बात करनी पड़े।

ओशो, वैचारिक-क्रांति द्वारा तोशायद आप सफल होंगे, क्योंकि हर नया आदमी नई विचारधारा के द्वारा क्रांति पैदा करता है, सफल होता है। शायद जड़-मानस को आप चेतन कर देंगे, लेकिन उसको आप दिशा कैसे देंगे?

मैं दिशा दिखाना नहीं चाहता। मेरा कहना यह है कि जड़-मानस को दिशा दिखाने की जरूरत पड़ती है, चेतन-मानस को दिशा दिखती है। वह मैं दिखाना नहीं चाहता।

चेतन होने के बाद उसके वापस आने की संभावना है?

चेतन कभी वापस नहीं आता। एक दफा अगर विचारशीलता पैदा हो जाए, तो आप जड़ नहीं हो सकते। बहुत असंभव है। विचारशील आदमी पीछे नहीं लौटता। जड़ता को ही अगर टूटने न दिया जाए तो जड़ बना रह जाता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इतना सामान इकट्ठा हो गया है भारत के चित्त में कि अगर कोई तेजी से आग न लगी, अगर तेजी से कोई विध्वंस न हुआ, तो हम मर जाएंगे, वह सामान बच जाएगा। हम मर रहे हैं और वह सामान बच सकता है।

लेकिन सामान को बचा कर क्या करिएगा?

असल में, जीवित कौम हमेशा चीजों को तोड़ कर फेंक देती है, नई बना लेती है। मरी हुई कौम डरती है। हम मरी हुई कौम हैं, इसलिए एकदम घबड़ाहट होती है--विध्वंस की बात मत करो। निर्माण की बात करो। कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखो। रचनात्मक कार्यक्रम से हम बड़े खुश होते हैं। और रचनात्मक कार्यक्रम क्या है कि चार आदमी चर्खा चला रहे हैं तो रचनात्मक कार्यक्रम हो रहा है। दिमाग खराब हो गया है? कि कोई गांव में जाकर बुहारी लगा आएं चार आदमी तो रचनात्मक कार्यक्रम हो रहा है।

मुल्क को धोखा देने की हद होती है, सीमा होती है। ये कंस्ट्रक्टिव वर्क हो रहे हैं सारे मुल्क में। और ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमों के आधार पर संत-महात्मा हो जाए आदमी, कठिनाई नहीं है।

और हमारा चित्त इतना कमजोर है कि कोई रचना की बात करे, हमें समझ में आती है। क्योंकि उससे लगता है कि चलो थोड़ा और जोड़ लें। इतनी ग्रीड है हममें, इतने लोभी हैं हम कि रचना की बात ही समझ में आती है सिर्फ, विध्वंस की बात समझ में नहीं आती। लोभ की वजह से, ग्रीड की वजह से, मुल्क पूरा का पूरा लोभी हो गया है। कुछ भी है, ले आओ, रख लो। कुछ न कुछ हो जो भी, रचना होनी चाहिए, इकट्ठे करते चले जाओ।

नहीं, यह लोभ छोड़ना पड़ेगा और तोड़ने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी। मैं मानता हूं कि हम जिस दिन तोड़ने की हिम्मत जुटा लेंगे हम--चित्त की धारणाओं को पहले तोड़ना है, फिर समाज के ढांचे को तोड़ना है--

उसी दिन हममें जवानी लौट आएगी, ताजगी लौट आएगी। और जो तोड़ने की हिम्मत जुटा लेता है, उसी हिम्मत से सृजन होता है।

यह ध्यान रहे, हिम्मत एक ही चीज है, चाहे उससे तोड़ो और चाहे बनाओ। साहस एक ही चीज है। अगर तोड़ने का साहस आ गया तो बनाने का साहस तो बहुत आसान है। तोड़ने के साहस के लिए इसलिए मैं जोर देता हूं निरंतर। और अगर वह जोर फैल जाए, तो हम कल बना भी सकते हैं। फिर कुछ कंस्ट्रक्शन हो सकता है।

अभी तो कंस्ट्रक्शन की बात ही करनी खतरनाक है। वह तो बात ही नहीं करनी है। वह तो पूरे मुल्क के ढांचे को एकदम अपील करती है कि हां, ठीक है; चलो, बिल्कुल राजी हैं। रचनात्मक कार्यक्रम है, बिल्कुल ठीक है। इसको करेंगे।

यह समाज का जो पांच हजार वर्ष का लोभी चित्त है, वह और इकट्ठा कर लेता है। नहीं, उसके मैं पक्ष में नहीं हूं। लेकिन यह ध्यान रहे कि मैं कोई डिस्ट्रक्टिव आदमी नहीं हूं, मैं कोई विध्वंसक चित्त नहीं है मेरा। चित्त तो सृजनात्मक ही है। लेकिन विध्वंस अनिवार्यता है। और उसकी बात किए बिना हम सृजन की दिशा में जा नहीं सकते हैं।

चौथा प्रवचन

धर्म और चिंतन

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कहानी कही है। पिछले जन्म की कहानी है। तब वे बुद्धपुरुष नहीं थे। और उस जन्म में, जो उस जमाने में एक बुद्धपुरुष थे, वे उनके दर्शन करने गए थे। तो जब उन्होंने उन बुद्धपुरुष के पैर छुए, पैर छूकर वे उठ ही पाए थे कि वे बुद्धपुरुष भी झुके और इनके पैर छू लिए! ये बहुत हैरान हो गए। इन्होंने कहा कि मैं आपके पैर छुऊं, नमस्कार करूं, यह तो ठीक है। आप मेरे पैर छुएं और नमस्कार करें, यह तो मेरी समझ के बाहर हो गया! तो उस बुद्धपुरुष ने कहा कि यह तुम्हारी समझ के बाहर है। क्योंकि मुझमें जो वास्तविक हो गया है, वह तुममें संभावना है। और आज नहीं कल तुममें भी वास्तविक हो जाएगा। वास्तविक हो जाएगा तुममें भी; जो आज बीज है वह कल वृक्ष हो जाएगा। मैं उस संभावना को नमस्कार करता हूं। और इसलिए कर रहा हूं ताकि तुम्हें याद दिला सकूं कि तुममें भी वह संभावना है।

आपको पहली बार सुना था, तब से यह प्रश्न मन में है कि जैसे अशांत व्यक्ति का गुस्सा होता है, क्रोध होता है--अपने लिए। वैसे ही क्या शांत व्यक्ति का भी क्रोध होता है, गुस्सा होता है--दूसरों के लिए, समाज के लिए?

हां-हां, बिल्कुल होगा गुस्सा। बिल्कुल ही शांत आदमी का गुस्सा भी होता है, युद्ध भी होता है उसका, संघर्ष भी है उसका। लेकिन अपने लिए नहीं है, इतना ही फर्क है। अशांत व्यक्ति भी लड़ता है, लेकिन वह अपने लिए लड़ता है। शांत व्यक्ति दूसरे के लिए लड़ेगा भी, क्रोध से भी भरेगा, लेकिन अपने लिए अब उसका कोई क्रोध नहीं है। क्रोध का उसका कोई अब भीतरी कारण नहीं है।

तो मैं जो कहता हूं, व्यक्ति शांत होना चाहिए और समाज में एक क्रांति आनी चाहिए। मेरा मानना है कि शांत व्यक्ति ही क्रांति ला सकता है, क्योंकि अशांत व्यक्ति बेचारा कहां से क्रांति लाएगा! क्रांति लाने के लिए जो शांत चित्तता चाहिए, वही उसके पास नहीं है।

लेकिन शांत व्यक्ति अब तक--यह रहा है अब तक--कि अब तक जो शांत व्यक्ति रहे हैं, उन्होंने कोई क्रांति नहीं लाई है। और उसका कारण यह था कि उनकी शांति भी मुर्दा थी, वह शांति जिंदा नहीं थी। तो एक आदमी ऐसे भी शांत हो सकता है कि बिल्कुल मुर्दा हो जाए, निष्क्रिय हो जाए, तो भी शांत हो जाता है। निष्क्रिय नहीं चाहता हूं आदमी को; मेरा कहना है कि शांति सक्रिय होनी चाहिए, नहीं तो शांति बेमानी है। और शांति जीवित होनी चाहिए। और शांत व्यक्ति दूसरे के लिए बहुत पीड़ित होगा। लेकिन वह पीड़ा उसकी नहीं है, अपने लिए तो बात समाप्त हो गई है, अब पीड़ा दूसरे के लिए है। और दूसरे की पीड़ा को मिटाने की वह चेष्टा करेगा।

यह बात सच है कि व्यक्ति ही क्रांति लाएंगे। लेकिन अशांत व्यक्ति जो क्रांति लाते हैं, वह उनकी अशांति से जन्मती है, वह उनकी करुणा से नहीं जन्मती है। और अशांति से जन्मी हुई क्रांति आग तो लगा देती है, जला तो देती है, मिटा तो देती है, बना नहीं पाती। तो क्रांतियां बहुत हुई हैं दुनिया में। और ऐसा हुआ अब तक दुर्भाग्य कि शांत आदमी क्रांति नहीं करता और क्रांति करने वाला आदमी शांत नहीं होता, ऐसा हुआ आज तक।

और इसलिए शांति भी हुई है और क्रांति भी हुई है, लेकिन क्रांति से हित नहीं हुआ और शांत आदमी समाज के जीवन और जगत के जीवन में एक कोने में सिमट कर समाप्त हो गया। इनका किसी तरफ जोड़ होना चाहिए।

मैं सब तरह के विरोधों को जोड़ने के लिए चेष्टा करता हूं। सब तरह के विरोध जुड़ जाने चाहिए। विज्ञान और धर्म जुड़ जाने चाहिए। भौतिकवाद और अध्यात्म जुड़ जाने चाहिए। शांति और क्रांति जुड़ जानी चाहिए। ये सब जुड़ जाने चाहिए। और तभी हम अच्छा समाज निर्माण कर सकेंगे, नहीं तो नहीं कर सकेंगे।

वह तो धीरे-धीरे जब मेरी पूरी बात, मैं सारे समाज को बदलने की पूरी दृष्टि मेरी साफ कर सकूंगा; और व्यक्ति की भी शांति का मेरा क्या ख्याल है, वह साफ होगा, तो कठिनाई नहीं होगी देखने में कि ये दोनों एक ही व्यक्ति की संभावनाएं हैं। अब तक ऐसा हुआ नहीं है। और इसलिए शांत व्यक्ति एक तरह का पलायनवादी हो जाता है, भागा हुआ हो जाता है। और क्रांतिकारी जो है, वह इतना क्रुद्ध रहता है कि क्रोध तो उसमें बहुत है, लेकिन अकेले क्रोध से कुछ होता है? सृजनात्मक नहीं हो पाता अकेला क्रोध।

मेरा कहना है कि शांत आदमी को भी क्रुद्ध होना पड़ेगा।

यह उलटा दिखता है--कि शांत आदमी और क्रुद्ध होगा! लेकिन जब तक शांत आदमी क्रुद्ध नहीं होगा, तब तक समाज बदलेगा नहीं। क्योंकि समाज का यह सब चल रहा है, इतनी कुरूपता चल रही है और शांत आदमी बैठा हुआ देखता रहता है, इसलिए सब चल रहा है। उसे क्रुद्ध होना पड़ेगा।

उन लोगों का कहना क्या है कि वह जो विस्फोट न हो, उसके लिए सूक्ष्म दृष्टि से भीतर जो लोग खोज करते हैं...

मेरा कहना यह है कि जितना दमन किया है, उतनी ही स्थूल दृष्टि हो जाएगी, एक। दमन जो है, दृष्टि की सूक्ष्मता को कम करेगा। दूसरा, भीतर जाने की हिम्मत कम हो जाएगी। और भीतर जाने की हिम्मत तभी बढ़ेगी, जब कि आप दमन को मुक्त छोड़ दें फिर से। और वह इतना घबड़ाने वाला होगा, क्योंकि इतना ज्यादा आपने अगर इकट्ठा कर लिया है दमन कि वह आपको पागल करने वाला होगा।

ये तथाकथित ब्रह्मचारी और साधु और संन्यासी, अगर इनको दस-पंद्रह साल की साधना के बाद इनको कहा जाए कि चित्त को तुम मुक्त छोड़ दो, तो सिवाय पागल होने के ये कुछ भी नहीं हो सकते! इसी वक्त पागल हो जाएंगे--इसी वक्त! क्योंकि इनके पास तो भारी उबलता हुआ लावा इकट्ठा है। वह तो किसी तरह से सम्हाले बैठे हुए हैं!

तो इनका, न तो ये सूक्ष्म हो सकते हैं, न यह अंतर्दृष्टि इनकी भीतर प्रवेश कर सकती है। क्योंकि प्रवेश कहां करोगे? अंतर्दृष्टि पैदा कैसे करोगे? अंतर्दृष्टि पैदा करने का मतलब यह है कि जीवन में एक सरलता हो, दमन न हो। और जीवन के बीच खंड-खंड टुकड़े न हों, कि एक खंड टुकड़ा दूसरे खंड टुकड़े की छाती पर चढ़ जाए। वह जिस टुकड़े के ऊपर चढ़ गया है, वह टुकड़ा उखाड़ फेंकने की कोशिश कर रहा है। और जो चढ़ गया है, अब उसने एक प्रतिष्ठा बना ली है, अब वह हट नहीं सकता वहां से। हटे तो उसे लगेगा, सब अस्तव्यस्त हो गया।

मनुष्य के भीतर इतने खंड जो हैं व्यक्तित्व के, अगर इनमें एक इनर-कांफ्लिक्ट है, तो न तो आप सूक्ष्म हो सकते हैं और न भीतर आप प्रवेश कर सकते हैं। आप सदा के लिए भयभीत हो जाएंगे, जितना ही आप दमन करेंगे। मेरा कहना है कि वह तो जितना जीवन को सरलता की स्वीकृति जिसकी है--जैसा जीवन है, जो भीतर

है, उसके लिए सरल चित्त से स्वीकार है। जैसे हमारी आंख है, हाथ है, वैसा सेक्स है, वैसा क्रोध है। और हम नहीं जानते कि क्यों है! इसलिए हम झगड़े में पड़ते नहीं। हम सिर्फ जानना चाहते हैं कि क्या है। हम यह मान कर चलते भी नहीं कि जानने से सेक्स विलीन हो जाता है। क्योंकि विलीन हो जाने की जो कामना है, वह मूलतः दमन का ही सूक्ष्म रूप है। हमें यह पता नहीं कि वह विलीन होगा कि और बढ़ जाएगा। और हमारा कोई पक्ष भी नहीं है कि वह विलीन हो, कि बढ़े, कि न बढ़े, कि घटे; हमें कोई प्रयोजन नहीं है।

हम इतना ही करना चाहते हैं कि जो भी हमारे भीतर है, वह सचेत और जागरूक हो जाए। अगर क्रोध भी हमारे भीतर हो, तो क्रोध सचेत और जागरूक हो जाए। और उसकी पूरी शक्ति और महत्ता से मैं परिचित हो जाऊं। और उसकी पूरी जो इनर वर्किंग है, उसको मैं जान लूं। सिर्फ इसे हमें जानने जाना है।

ऐसा व्यक्ति ऐसे सरल भाव से... इसको मैं सरल भाव कहूंगा। दमन करने वाला तो सरल कभी होता ही नहीं। उससे ज्यादा जटिल आदमी नहीं। वह चाहे कितना ही सरल दिखाई पड़े, वह लंगोटी लगाए हुए खड़ा है, और आप जाते हैं तो झुक कर वह नमस्कार करता है, लेकिन वह सरल कभी नहीं हो सकता। वह जटिलता उसके भीतर खड़ी हुई है। तो जितना चित्त जटिल होगा, उतना भीतर प्रवेश नहीं होता है।

एक्सट्रीम में क्या होता है?

एक्सट्रीम में जो होने वाला है, अगर दमन कोई करता ही चला जाए...

एक्सट्रीम पर रिवर्स होता है न! जैसे टाल्सटाय का, ही एनज्वायड कंप्लीटली एंड देन ही वेंट बैक। इट वा.ज ए रिएक्शन!

नहीं, कहीं वेंट बैक हुआ नहीं टाल्सटाय का बेचारे का!

उसका रिएक्शन ही हुआ न कंप्लीटली भोग में उतरने का...

वह कुछ मामला नहीं है, बस वह सब मेंटल मामला है, इससे ज्यादा नहीं है गहरा कुछ टाल्सटाय का। वह हम बात करेंगे!

यह जो अगर कोई दमन करता ही चला जाए और दमन सफल हो जाए--सफल होना बहुत मुश्किल मामला है--तो स्प्लिट पर्सनैलिटी हो जाएगी। दो हिस्सों में टूट जाएगा, अगर सफल हो जाए। सफल होना बहुत मुश्किल मामला है। दमन सफल होता नहीं, क्योंकि प्रकृति के बिल्कुल ही प्रतिकूल है आपका कार्य जो है। शीर्षासन करने जैसा है। दस-पांच मिनट आप खड़े हो जाते हैं, फिर चौबीस घंटे पैर पर ही खड़े रहते हैं।

मगर यदि कोई आदमी चौबीस घंटे सिर पर खड़े रहने के लिए तैयार हो जाए, तो दमन की अगर पूरी सफलता मिल जाए, तो व्यक्तित्व दो हिस्सों में टूट जाएगा और उन दो हिस्सों को एक-दूसरे का कोई पता नहीं रह जाएगा। अगर पूर्ण सफल हो दमन में। दो आदमी हो जाएंगे इसके भीतर, यह एक आदमी रह ही नहीं जाएगा। और इसके बीच के जो सेतु हैं, वे सब टूट जाएंगे। इसका आखिरी परिणाम पागलपन हो सकता है।

विस्फोट होगा और इतना होगा कि सारा का सारा एक्सप्लोजन हो जाए, यह आदमी बिल्कुल ही पागल हो जाए।

दमन पागल करता है और दमन करने वाली सभ्यता पागल करती है। और करीब-करीब हर आदमी को हमने उस हालत में पहुंचा दिया है इन पांच हजार वर्षों के सभ्यता के इतिहास में कि वह विस्फोट हो जाए। अगर वह नहीं हो रहा है, तो उसका कारण यह है कि दमन सफल नहीं हो पाया है। यानी निकास के रास्ते निकल आते हैं। यानी वह ब्रह्मचर्य वगैरह थोपता है, लेकिन गैर-ब्रह्मचर्य का कोई न कोई रास्ता खोज लेता है। और इसलिए ब्रह्मचर्य भी चलता है। इसीलिए ब्रह्मचर्य चलता है, नहीं तो वह इसी वक्त खतम हो जाए। अंततः विस्फोट ही हो सकता है पूरे व्यक्तित्व का और पागलपन, विक्षिप्तता के सिवाय कहीं कोई ले जा नहीं सकता।

इसलिए मेरा कहना यह है कि इस विक्षिप्तता के बाद कुछ काम हो सकता है, क्योंकि वह फिर उस हालत में आ जाएगा जहां चीजें सरल हो गईं। लेकिन यह बहुत उपद्रव का मामला है, इससे कोई मतलब नहीं है। यह ऐसे उपद्रव का मामला है कि हो सकता है उस विक्षिप्तता में वह टूट ही जाए, व्यक्तित्व ही टूट जाए, शरीर ही टूट जाए। यह जिंदगी तो कम से कम खराब हो जाए।

अभी वे अमेरिका में एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। अभी वे कहते हैं कि जो पागलपन है, जैसा कल तक हम सोचते थे कि गरीबी व्यक्ति का जिम्मा है, ऐसा आज उसमें एक वर्ग है मनोवैज्ञानिकों का, जो कहता है, पागलपन भी व्यक्ति का जिम्मा नहीं है। पागलपन भी उसके आस-पास के सारे अंतर्संबंधों का दबाव है। और इसलिए पागल का सीधा अकेला इलाज करना बिल्कुल व्यर्थ है। वह हो नहीं सकता। क्योंकि वह उसका मामला ही नहीं है। तो वे कहते हैं कि उसका इलाज करने के लिए तो पूरी एक कम्युनिटी होनी चाहिए। और कम्युनिटी कुछ डेवलप करते हैं, दो-चार प्रयोग कर रहे हैं कि वह पूरी कम्युनिटी जो है, वह उस व्यक्ति के पूरे अंतर्संबंध बदल दे।

जैसे कि कल उसने सड़क पर किसी स्त्री को जाते देखा था और उसका मन हुआ था कि वह उसको गले लगा ले। गले लगाता है, तो पिटता है, तो जाता है जेलखाने! नहीं गले लगाता है, तो वह गले लगाने वाला चित्त उसका चक्कर मारता है और वह उसे पागल बनाता है। तो अब एक कम्युनिटी होनी चाहिए, जहां जो दस-पांच स्त्रियां रह रही हैं, उनको यह समझाया गया है कि अगर कोई गले लगा ले तो यह कोई बहुत उपद्रव और तूल बनाने की जरूरत नहीं है। उससे गले लग कर, नमस्कार करके, रास्ते पर चले जाना है। ताकि वह जो गले लगाने वाला पागल है, वह अगर किसी को गले लगा ले, और कुछ उपद्रव न हो कहीं भी, और ये चीजें ऐसी ही हो जाएं जैसे हवा का झोंका आया और गया, तो उसका पागलपन मिट सकता है। नहीं तो नहीं मिट सकता है।

और उसके बड़े अच्छे परिणाम हुए हैं। आज जिसको हम पागल कहते थे, वह आदमी पागल था ही नहीं। वह सिर्फ कम्युनिटी के प्रेशर ऐसे थे कि उसको सप्रेसिव बनाया उसने। और वह सप्रेसिव होने से बेचारा पागल हो गया था। अगर ये विलेज कम्युनिटीज इस तरह की सफल होती हैं, तो आज नहीं कल आपको बड़े पैमाने पर सोचना पड़ेगा कि बजाय अलग कम्युनिटी बनाने के आप एक ऐसी सोसाइटी क्यों न बनाएं जो इस तरह की बेवकूफियों से आदमी को बचाती हो। हमारी पूरी सोसाइटी इस तरह की बेवकूफियां सिखाती है, बचाती नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

रेशनली देखता है, अगर रेशनली देखता है, और हम कहते हैं कि अपने से बाहर जाता है, अलग खड़ा होता है, तो इसमें स्प्लिट पर्सनैलिटी शुरू होगी और टेंशन शुरू होगा, और वह भी पागल कर सकती है।

इसलिए मेरा कहना है कि यह जो देखने का मामला है, इट शुड नॉट बिकम एन एफर्ट। और अपने से बाहर जाने का कोई सवाल नहीं है। यह तो बहुत एफर्टलेस, जो हो रहा है, उसकी जस्ट अवेयरनेस है। यह ऑब्जर्वेशन नहीं है ऐसा कि जैसे मैं आपको देख रहा हूं, ऐसा ही मैं अपने को देखूं, तब तो पागलपन पैदा करने वाला है। वह तो बिल्कुल ही पागलपन लाने वाला है। इसलिए हमारे साधु-संन्यासी जो इस तरह का ऑब्जर्वेशन करने की कोशिश करते हैं, वे पागल होंगे। वह तो फिर उन्होंने दो हिस्सों में तोड़ लिया अपने को। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप किस काम के लिए दो हिस्सों में तोड़ते हैं। किसी काम के लिए दो हिस्सों में तोड़ें--चाहे सप्रेशन के लिए, चाहे ऑब्जर्वेशन के लिए--आपने एक गल्फ पैदा कर ली। और गल्फ के जो परिणाम होने वाले हैं, वे होंगे। वे आपको दो हिस्सों में तोड़ देंगे।

इसलिए मैं कहता हूं कि यह जो सेल्फ-ऑब्जर्वेशन, जिसकी मैं बात करता हूं, वह वैसा सेल्फ-ऑब्जर्वेशन नहीं है कि आप अपने से बाहर खड़े होकर और अकड़ कर खड़े हो गए हैं और अपने ही चित्त की वृत्तियों को दूर से देखने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसी कोई दूरी नहीं है, आप ही चित्त हो और आप खड़े हो नहीं सकते। यह खड़ा होना बिल्कुल ही अस्वाभाविक, झूठा और काल्पनिक है। और यह जो इमेजिनरी आप आउटसाइड गए हो, यह गए-वए नहीं हो कहीं, यह सिर्फ ख्याल में चले गए हो।

दिस लीड्स टु मॉरल हिपोक्रेसी।

बिल्कुल ही ले जाएगा, बिल्कुल ही। ले ही जा रहा है। सारे तरफ से पाखंड पैदा करेगा। और पाखंड पैदा कर दे, इससे कोई हर्जा नहीं है। आपको खंड-खंड करेगा। यानी पाखंड तो ठीक है। पाखंड तो यह भी हो सकता है कि सिर्फ, सोसाइटी चूंकि बहुत कर्निंग है, गलत है, इसलिए आपको पाखंडी होकर रास्ता निकालना पड़ता है। उस हालत में पाखंड शायद आपके लिए नुकसान भी नहीं पहुंचा रहा है। या आप पागल हो जाओगे, अगर आप पाखंडी नहीं होते। सोसाइटी ने विकल्प ऐसे छोड़े हुए हैं कि या तो आप पाखंडी हो जाओ और या फिर जीना मुश्किल है, पागल हो जाओ। तो समझदार आदमी पाखंडी हो जाएगा। वहां कोई रास्ता नहीं है उसको निकालने का और।

आप खंड-खंड हो जाओगे! जो कि भारी खतरा है। और खंड-खंड होना शुरू हो गया, जैसे ही आपने अपने साथ कुछ करना शुरू किया, यानी ऑब्जर्वेशन या कुछ भी, आपने कुछ करना शुरू किया अपने साथ कि आपने दो टुकड़े मान लिए--एक मैं करने वाला और एक होने वाला।

मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि आप इकट्ठे एक ही हैं। जब क्रोध है, तो आप क्रोध ही हैं। ऐसा नहीं है कि आप आउटसाइड क्रोध के खड़े हो गए हैं और देख लेंगे। आप क्रोध ही हैं। इस क्रोध को जो समझना है, वह समझना भी कोई आप अलग हैं, ऐसा नहीं है। अपने ही क्रोध को उसके साथ एक रह कर उसे जानना, समझना है। न कोई लड़ाई लेनी है उससे, न जानने-समझने में कोई स्ट्रेन पैदा करना है। लेकिन जैसे मैं अपने हाथ को समझता हूं, जैसे मेरे पैर में तकलीफ है तो मैं पैर को समझता हूं, जैसे मेरे सिर में दर्द है तो मैं सिर को समझता हूं; ऐसे ही जो भी मेरे भीतर है, मैं उसे समझने की कोशिश करता हूं। यह जो कोशिश है, दो हिस्सों में तोड़ने वाली नहीं है। और न मेरी आकांक्षा है कि इसको मैं बदल दूं, न मेरी आकांक्षा है कि यह कुछ और हो

जाए, न यह कोई कामना है कि यह बदल जाए। कामना कुल इतनी है कि जो भी मैं हूं... इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वह अच्छा है या बुरा, यह बेमानी है। अच्छा और बुरा दूसरों का वैल्युएशन है। मैं तो जो भी हूं, वही हूं। वह जो फैक्ट है मेरा, उसे मैं जान लूं और उसे जीने की पूरी कोशिश करूं।

इस कोशिश से, आउट ऑफ दिस, कुछ होना शुरू होता है, वह स्प्लिट में नहीं ले जाता आपको। बल्कि वह आपको मोर इंटीग्रेटेड और धीरे-धीरे-धीरे-धीरे वहां ले जाता है, जहां आपके भीतर विरोधी स्वर होता ही नहीं। आप जो होते हैं, टोटल होते हैं। क्रोध में भी, प्रेम में भी, सेक्स में भी; जो भी आप होते हैं, टोटल होते हैं। जो बच रहता है, वह आपको टोटेलिटी दे जाता है। और मेरा मानना है, ऐसे व्यक्ति का सेक्स भी और है, ऐसे व्यक्ति के क्रोध का आनंद भी और है। ऐसे व्यक्ति का, जो भी उसके जीवन में है, वह समग्र हो गया है, इकट्ठा हो गया है। और ऐसी स्थिति को तो मैं कहता हूं कि विमुक्ति की स्थिति बन सकती है। लेकिन वे तो स्थितियां सब विक्षिप्त बनने की स्थितियां हैं।

यह जो इस भांति सहज, सरल और जैसे हम हैं उसके स्वीकार से चलने वाला जो जानना है, यह तो आपको सूक्ष्मतम दृष्टि दे सकता है। लेकिन असहज, कठिनाई से, दबाने वाला, तोड़ने वाला उसको खंड-खंड में, कोई आपको सूक्ष्म दृष्टि नहीं दे सकता है।

इसलिए कई दफे इतनी हैरानी होती है कि जिनको आप बड़ी सूक्ष्म दृष्टि के लोग कहते हैं, वे अत्यंत स्थूल दृष्टि के लोग होते हैं, जिनमें सूक्ष्म जैसी कोई चीज ही नहीं होती, हो ही नहीं सकती। हमारे बड़े-बड़े महात्मा, जिनका हम भारी शोरगुल मचाए रखते हैं, अत्यंत स्थूल दृष्टि के लोग होते हैं। वे बातें भी जो करते हैं बड़ी-बड़ी, वे बातें भी अत्यंत स्थूल होती हैं, उनमें कुछ मामला नहीं होता। यानी उसमें कोई गहरा जानना नहीं है। क्योंकि जानने से तो वे बच ही गए हैं। और बच गए हैं... जानना तभी हो सकता है, जब मेरा कोई आग्रह न हो। इस कमरे में मैं आऊं और जो भी है उसे जानने की मेरी तैयारी हो, मेरा कोई आग्रह ही न हो। मैं आऊं और जान लूं जो भी है। न मेरा यह ख्याल हो कि यह कुर्सी यहां से वहां होनी चाहिए, न मेरा यह ख्याल हो कि दीवाल का रंग यह नहीं होना चाहिए, वह होना चाहिए। ये सब आग्रह लेकर मैं इस कमरे में आया, तो इस कमरे में और मेरे भीतर जो कांफ्लिक्ट होने वाली है, वह स्थूल करेगी, वह सूक्ष्म नहीं करती है।

और दो नहीं हैं वहां कोई। यह जो भ्रांति हजारों साल में हमको पैदा की गई है कि क्रोध कुछ अलग है, घृणा कुछ अलग है, सेक्स कुछ अलग है और हम कुछ अलग ही हैं। यह बड़ी खतरनाक है! लेकिन वह खड़ी है। ये सब अद्वैत की बातें करने वाले लोग हैं, लेकिन बुनियादी रूप से द्वैत पर खड़े हुए हैं--यह शरीर तुम नहीं हो, तुम शरीर से अलग हो।

नहीं, क्रोध भी मैं हूं। जो कुछ भी है, मैं हूं। और इसलिए लड़ाई किससे लेनी है? और लड़ाई लेगा कौन? यह कोई सवाल नहीं है। इतना ही हो सकता है कि मैं जो हूं, उसे मैं पूरा नहीं जानता हूं, बहुत सा हिस्सा अंधेरे में, छाया में दबा पड़ा है, वह भी मैं हूं, उसे मुझे जानना चाहिए। उसे मैं पूरा जानूं, तो शायद जीना ज्यादा सुंदर, ज्यादा सरल, सहज और आनंदपूर्ण हो जाए। तो सिर्फ उसे पूरा जान लूं। जानने में ही जो विलीन हो जाएगा, वह बात अलग। जानने में जो बच जाएगा, वह पूरा हो जाएगा, बात अलग।

लेकिन पुरानी सारी साधना आज तक की, सारी दुनिया की, द्वंद्व को लेकर चलती है, वहीं से वह शुरू होती है। वह लड़ाई को मान कर चलती है। और लड़ाई को मान कर चली हुई कोई भी साधना अंततः और गहरी लड़ाई में ही ले जाएगी, और कहीं पहुंचा नहीं सकती। और जितना कष्ट और जितनी पीड़ा इस द्वंद्व ने पैदा की है जगत में, उतनी किसी और बात ने पैदा नहीं की है। बहुत कष्ट और पीड़ा पैदा की है। इतनी आत्मग्लानि

और इतनी आत्महीनता पैदा की है! और वह तरकीब ऐसी है, जैसे हमने कुत्ते को उसकी पूंछ पकड़ने की धुन पकड़ा दी हो--कि जब तक तू अपनी पूंछ नहीं पकड़ लेगा, तेरा जीवन व्यर्थ है। अब वह कुत्ता अपनी पूंछ पकड़ने के लिए उछलकूद मचा रहा है। झपटता है, तो लगता है कि आई पकड़ में। लेकिन वह जितना झपटता है, उतनी पूंछ पीछे फिर फिंक जाती है। अब वह पागल होने के रास्ते पर पड़ा है, कुत्ता पागल होगा। या तो पागल होगा, या पाखंडी हो जाएगा। पूंछ रखे रहेगा, कहेगाः हां, मैंने पकड़ ली। मैंने पकड़ ली! मैंने पूंछ पकड़ ली! और वह जानता है कि पूंछ तो पकड़ी नहीं है। अब वह धोखा देगा। और या फिर यह होगा कि वह पागल हो जाएगा, तब यह झंझट छूटेगी।

पागल होना भी हमारे व्यक्तित्व की आखिरी कोशिश है हमें उससे मुक्त करने की जो हमने जबरदस्ती थोप लिया है। इट इ.ज लास्ट सॉल्युशन। यानी जब कुछ नहीं कर पाता है हमारा चित्त, तो फिर यही है रास्ता कि ठीक है भई, इस आदमी को पागल कर दो, ताकि यह झंझट से छूट जाए। वह आखिरी कोशिश है।

तो पागलपन, यह बड़ी कृपा है ऐसे प्रकृति की। अगर वह भी न हो, तब हम कहां पहुंचेंगे, कहना मुश्किल है। हम कहां पहुंच जाएं, बहुत मुश्किल है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अगर हमने एफर्ट बनाया है जाग्रत रहना, तब तो वह बार-बार खो सकता है। क्योंकि कोई भी एफर्ट जो है, वह सतत नहीं हो सकता है। एफर्ट कोई भी सतत नहीं हो सकता है। श्रम कोई भी सतत नहीं हो सकता है, विश्राम करना पड़ेगा। यानी अगर मैं मिट्टी खोदता हूं आठ घंटे, तो आठ घंटे खोद लूंगा, फिर मुझे दस घंटे सोना पड़ेगा। तब मैं फिर इस योग्य होऊंगा कि मिट्टी खोदूं। मिट्टी खोदना चौबीस घंटे नहीं चल सकता। कोई भी श्रम चौबीस घंटे नहीं चल सकता। क्योंकि जैसे ही वह श्रम बना, उससे विश्राम की जरूरत पड़ जाएगी।

इसलिए जो भी संत संतत्व को श्रम बना लेते हैं, उनको फिर छुट्टी लेनी पड़ेगी संतत्व से। और वह छुट्टी लेनी हमको पाखंड मालूम पड़ेगा--कि वह आदमी सबके सामने तो कहता था सिगरेट पीना बुरा है; और दरवाजा बंद करके सिगरेट पी रहा था! तो वह हमको पाखंडी लगता है। वह बेचारा सिर्फ छुट्टी ले रहा है। सिगरेट न पीना एक श्रम था उसको। अब वह श्रम शिथिल होगा। एक जगह जाकर आएगा कि वह कहेगा कि अब विश्राम करो। तो उसको सिगरेट पीनी पड़ेगी।

हां, जो मैंने यह कहा कि जो सहज-सहज जागते चले जाना है। यह जागरण जैसे ही आ जाता है, इसके लौटने का कोई सवाल ही नहीं है। क्योंकि इसको आप लाए नहीं हैं, यह आया है। और धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जागरण और आप दो चीजें नहीं रह गए हैं, आप ही जागरण हो गए हैं। आपने क्रोध तक को दूसरा नहीं माना, तो जागरण को दूसरा मानने का क्या सवाल है! वह धीरे-धीरे आप ही हो गए हैं, आप ही हैं। उसके लौटने का कोई प्रश्न नहीं है, उसके लौटने का कोई सवाल नहीं है।

जो भी हमने जान लिया है--जान लिया है--उससे पीछे लौटने का सवाल नहीं है। उसको फिर अनजाना नहीं किया जा सकता। उसे अनजाना करना मुश्किल है। हां, जो हमने न जाना हो, ऐसे ही सीख लिया हो जबरदस्ती, वह कल फिर डांवाडोल हो सकता है। लेकिन जो मैंने जान लिया है--जैसे एक बच्चे ने प्रेम जान लिया, नहीं जाना था अब तक, अब उसने प्रेम जान लिया। अब वह प्रेम को अनजाना नहीं कर सकता। उसका अनजाना होना अब असंभव है। जानना जो है, चूंकि वह हमारा हिस्सा ही हो जाता है, वह हमसे कहीं अब छूट

सकता नहीं। हां, जानना ऐसा हो सकता है कि उसने प्रेम की चार किताबें पढ़ ली हों और प्रेम के संबंध में कुछ जानना सीख लिया हो, वह अनजाना कल हो सकता है।

जागरण के प्रयोग से धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जो भी हममें होता है, तो जागरण कोई ऐसी क्वालिटी नहीं है जो बाहर से आकर आपसे जुड़ जाती है, बल्कि आपका ही इनर बीइंग है जो धीरे-धीरे प्रकट हो जाता है। यह कोई ऐसी चीज होती कि आपके खीसे में रख दी गई, तो गिर सकती थी, खो सकती थी, जा सकती थी। यह आप ही थे जो रि-डिस्कवर हो गए। यह आप ही थे जो आपने उघाड़ लिया अपने को। अब, अब कोई सवाल नहीं रहा।

मगर बाह्य परिस्थिति कुछ उलटी-सुलटी हो, तो उसमें फिर उसके रिएक्शंस में कुछ फर्क नहीं पड़ता?

वह उलटी-सुलटी हो तो रिएक्शंस में फर्क पड़ेगा, अगर यह जागरण आपने साधा हो। तो साधने के लिए अनुकूल, प्रतिकूल परिस्थितियां फर्क ला देंगी। क्योंकि वह जो साधा था, तो साधने के लिए अनुकूल परिस्थिति चाहिए थी।

एक आदमी मौन हो गया जंगल में बैठ कर। तो जंगल की स्थिति में मौन रह सकता है वह, बाजार में लाओ तो झंझट में पड़ जाएगा। क्योंकि वह मौन जो है एक कंडीशनिंग है। वह जंगल की एक खास परिस्थिति में उसने मौन को संस्कारित कर लिया है। अब उसको आप बाजार में ले आओ, तो मुश्किल पड़ गई। लेकिन एक आदमी है जो बाजार में, जंगल में, सब में घूमते-डोलते हुए मौन हो गया है। बाजार में भी आया है, जंगल में भी गया है; गांव में भी है, शहर में भी है; लड़ भी रहा है, झगड़ भी रहा है; और मौन हो गया है। वह सारी परिस्थिति में, उसने कोई विशेष परिस्थिति की मांग नहीं की है साधने के लिए। तो कोई विशेष परिस्थिति उसकी साधना को तोड़ नहीं सकती।

यानी हमने जो साधते वक्त मांगा हो, तो फिर झंझट होगी। हमने अगर कहा हो कि भई मैं तो पत्नी से दूर रह कर ही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता हूं। तो फिर यह ब्रह्मचर्य मुश्किल में पड़ जाएगा, कल अगर पत्नी पास आ गई। तो फिर दिक्कत की बात है। क्योंकि उसकी तो कंडीशनिंग थी, वह शिथिल होते ही से बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा।

स्वामी राम अमेरिका से लौटे, तो उनकी पत्नी उनसे मिलने गई। ऐसा आते देखा पत्नी को, सरदार पूर्ण सिंह उनके पास रहते थे, उनसे कहा, दरवाजा लगा दो!

तो सरदार पूर्ण सिंह ने कहा, हैरानी की बात है! आपको मैंने हजारों स्त्रियों से मिलते देखा, आप कभी भयभीत नहीं हुए। इस गरीब औरत ने क्या बिगाड़ा है? क्या यह अभी भी आपकी पत्नी है? और आप तो कहते हैं कि छोड़-छाड़ कर चले गए! बात खतम हो गई। अब यह एक सामान्य स्त्री है, जैसी और स्त्रियां हैं।

पूर्ण सिंह ने कहा, अगर आप अपनी पत्नी से नहीं मिलोगे, तो मैं भी आपको नमस्कार करता हूं। क्योंकि यह मेरी समझ के बाहर है। अभी तक आप कहते हैं, सब में ब्रह्म है। आज अचानक इस स्त्री में ब्रह्म नहीं रहा? दरवाजा बंद करवाते हैं, इसके लिए खास इंतजाम करते हैं! यह कुछ खास है?

और खास है वह। क्योंकि वह जो साधा है, इसको छोड़ कर साधा है। इसके आने से वह डांवाडोल हो सकता है। यानी इस स्त्री को विशेष स्वीकृति मन की है, क्योंकि इसकी तरफ पीठ करके कुछ साधा गया है। मुंह करने से वह डोल सकता है, गिर सकता है, खंडित हो सकता है।

तो अगर आपने कोई अनुकूल परिस्थिति मांगी है साधना में, तो कल प्रतिकूल परिस्थिति होने पर आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। इसीलिए मेरा कहना है, कोई विशेष परिस्थिति मत मांगो। जो परिस्थितियां आती हैं, जिनमें जीना ही पड़ता है, उनमें ही जीओ और जानते रहो। इस सबसे तोड़ कर अपने को मत ले जाओ। नहीं तो कल फिर झंझट है, फिर वापस लौटना हो सकता है।

साधु पतित होते हैं, क्योंकि वे साधु ही नहीं होते। और पतित होने का कुल कारण इतना होता है कि एक विशेष घेरा बना कर उसमें किसी तरह खड़े होकर अपने को साध लेते हैं। वह घेरा कल टूटता है। टूटेगा, फिर मुश्किल हो जाएगी, फिर कठिनाई हो जाएगी। फिर थोड़ा सा भी उसमें फर्क, और सब डांवाडोल हो जाएगा। असल में इसीलिए मैं कहता हूं कि वह कोई जानना-वानना नहीं था। एक कवायद थी, जो सीख ली थी। वह काम दे गई कवायद के वक्त, फिर बेकार हो गई।

यह तो मानसिक से ही होगा यह सारा इंटीग्रेटेड, होल ऑफ दि बॉडी।

असल में यह भी हमारा जो ख्याल है--मानसिक, शारीरिक, आत्मिक--यह सब बचकाना है। यह सब कामचलाऊ डिवीजन है। ऐसा कोई डिवीजन कहीं है नहीं।

नहीं, मगर समझ लीजिए कि ऐसी परिस्थिति में आ गए, तो मानसिक तो इंटीग्रेटेड हो गए। तो बॉडी का भी जो है, विल नॉट दैट बी आल्सो कंप्लीटली फ्री फ्रॉम डिजीजेज ऑर एनीथिंग लाइक दैट?

जरूरी नहीं है। बहुत दूर तक काम करेगा यह। बहुत दूर तक काम करेगा। अगर माइंड बहुत इंटीग्रेटेड है, तो बॉडी पर माइंड के डिसइंटीग्रेशन से जो-जो नुकसान होते थे, वे नहीं होंगे। लेकिन बॉडी पर और चीजों से जो नुकसान होने वाले हैं, वे होंगे।

कोई गोली चला कर मार देगा आपको, तो आपका इंटीग्रेटेड माइंड कुछ भी नहीं कर लेगा। गोली तो छेदेगी और शरीर कट जाएगा। मतलब अगर हम ठीक से देखें, तो शरीर हमारा बाहर के जगत से प्रतिपल जुड़ा हुआ है।

सच बात तो यह है कि हम अपने शरीर को कहां खतम करें, यह कहना बहुत मुश्किल है। यानी यह जो चमड़ी की सीमा आ जाती है, यह मेरे शरीर की सीमा है, यह कहना बिल्कुल नासमझी है। बिल्कुल नासमझी है। क्योंकि यह पूरी हवा का जो चारों तरफ फैलाव है, यह मेरे शरीर का हिस्सा है। अगर यह सारी हवा यहां से अलग कर ली जाए, तो मैं एक सेकेंड नहीं जी सकूंगा। वह जो दूर सूरज है दस करोड़ मील दूर पर, वह मेरे शरीर का हिस्सा है। अगर वह वहां ठंडा हो जाए, तो मैं यहां ठंडा हो जाऊंगा। वह सारा उत्ताप तो उससे मुझे आ रहा है।

तो मेरा शरीर क्या है? अगर बहुत गौर से हम देखें, और अगर मैं को हम केंद्र मान लें, तो सारा का सारा यूनिवर्स मेरा शरीर है। कहां हम उसको खतम करें, किस जगह पर जाकर?

इंटर-डिपेंडेंस है।

हां। तो यह जो सारा का सारा इंपैक्ट है, यह तो कोई आपके इंटीग्रेशन, डिसइंटीग्रेशन से इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। यह फर्क पड़ेगा उतना कि शरीर पर करीब-करीब सौ में से पचास मौकों पर बीमारियां भीतर की तरफ से आ रही हैं। ये भीतर की तरफ से आनी वाली बीमारियां तो विलीन हो जाएंगी। माइंड की कांफ्लिक्ट से शरीर पर जो असर पड़ रहा है, वह तो विलीन हो जाएगा। लेकिन बाहर के जगत के संघर्षण से जो असर पड़ रहा है, वह विलीन होने वाला नहीं है।

इसलिए महावीर भी मरेंगे, बुद्ध भी मरेंगे। और अरविंद जैसे लोग पागलपन की बातें सोचेंगे कि हम फिजिकली इम्मार्टल हो गए, और फिर मर जाएंगे! अब इस तरह के लोगों को सिर्फ एक ही फायदा है कि जिंदा-जिंदा तो आप उनसे कोई झगड़ा नहीं कर सकते, क्योंकि वे कहते हैं हम फिजिकली इम्मार्टल हैं। और मर जाते हैं, तब झगड़ा करने को कोई बचता नहीं है। तो कोई भी दावा कर सकता है कि मैं फिजिकली इम्मार्टल हूं। इसमें कोई झंझट ही नहीं है। क्योंकि मैं भी दावा कर दूं कि मैं शरीर से अमर हूं, तो आप कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। क्योंकि जब तक मैं हूं, तब तक तो दावा मेरा सही है। और जब मैं मर गया, तो आप किससे झगड़िएगा?

तो शरीर जो है, वह तो अगर हम गौर से देखें तो उसमें दो तरह के प्रभाव आ रहे हैं। एक भीतर की तरफ से आने वाले। लेकिन ऐसा मत सोचें कि भीतर की तरफ कोई दूसरी एनटाइटी बैठी है। सिर्फ भीतर की तरफ-- जैसे मैंने श्वास ली, एक श्वास वह है जो बाहर से भीतर की तरफ गई, एक श्वास वह है जो भीतर से बाहर की तरफ गई। वे एक ही श्वास के दो प्रवाह हैं, जैसे लहर आई और गई। तो एक तो भीतर से बाहर की तरफ आने वाले प्रभाव हैं, उनको हम मानसिक कह दें। बाहर से भीतर की तरफ आने वाले प्रभाव हैं, उनको हम शारीरिक कह दें।

तो जितने मानसिक प्रभाव हैं द्वंद्व के, जो शरीर को तोड़ते हैं, वे विलीन हो जाएंगे। तो शरीर मानसिक रोगग्रस्त तो नहीं होगा। फिर बाहर से आने वाले प्रभाव हैं, वे जारी रहेंगे। उनसे अगर बचना है, तो विज्ञान से सलाह लेनी पड़ेगी।

तो फिर उसके लिए विज्ञान के हिसाब से प्लानिंग करनी पड़ेगी।

बिल्कुल ही, बिल्कुल ही करनी पड़ेगी।

इतना लक्ष्य तो रखना ही पड़ेगा।

हां, बिल्कुल ही रखना पड़ेगा।

नहीं रखने से आत्महिंसा की स्थिति हो जाएगी।

हो ही रही है। साधु-संन्यासी जितनी हिंसा कर रहे हैं शरीर के साथ, शायद ही कोई कर रहा हो! एकदम, जिसको मैसोचिस्ट कहें, वे हैं पूरे के पूरे। और ये सब बातें भी बड़ी खतरनाक हैं, अगर ख्याल में बैठ जाएं। असल मतलब यह है कि हमने चीजों को तोड़-तोड़ कर ऐसे कंपार्टमेंट बना लिए हैं, जो कि वस्तुतः नहीं हैं। बाहर और भीतर कामचलाऊ बातें हैं। यानी एक डिवीजन करने में उपयोगी हैं। लेकिन बाहर यानी क्या है? और भीतर

यानी क्या है? एक ही चीज के बाहर-भीतर होते आंदोलन हैं। और चूंकि मैं अपनी तरफ से खड़े होकर देखता हूं, इसलिए जो मुझे भीतर दिखाई पड़ता है वह आपके लिए बाहर है और जो आपके लिए भीतर दिखाई पड़ता है वह मेरे लिए बाहर है। तो वे बिल्कुल ही रिलेटिव कंसेप्शंस हैं, एक ही चीज है।

अगर यह बहुत साफ हो जाए, तो विज्ञान और धर्म दो चीजें नहीं रह जाते। अगर बाहर और भीतर एक हो जाता है, तो हम जानते हैं कि बाहर जाता हुआ जो प्रवाह है, उसके संबंध में जानना, समझना, खोजना धर्म है; भीतर की तरफ आता हुआ बाहर से जो प्रवाह है, उसे जानना, समझना, खोजना विज्ञान है। और किसी दिन जब कि यह शरीर और आत्मा का द्वैत, पदार्थ और परमात्मा का द्वैत, दोनों विलीन हो जाएंगे, तो धर्म और विज्ञान जैसी दो चीजें नहीं होंगी, एक ही चीज होगी। एक ही चीज होगी। और जिस दिन यह होगा, उसी दिन हम पूरी तरह से उस जगह खड़े होंगे, जहां चीजें साफ-साफ जानी गईं। नहीं तो नहीं जानेंगे।

धर्म को पाने के बाद भी विज्ञान की दृष्टि अगर कम हो, तो उसके जो परिणाम शरीर पर होने चाहिए, वे तो होंगे।

बराबर होने वाले हैं। उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं।

तो उसके लिए भी खुद की जागरूकता होनी चाहिए।

होनी ही चाहिए। जरूर होनी चाहिए।

यह मैं खास पर्टिकुलर इसलिए पूछता हूं कि मैंने भी सफरिंग किया है बॉडी को निग्लेक्ट करने के कारण। तो साधना के योग के अंदर शरीर के प्रति कुछ ध्यान देना चाहिए कि नहीं?

बिल्कुल पूरा ध्यान देना चाहिए, शरीर की पूरी फिक्र करनी चाहिए। असल में हमारी पूरी की पूरी भाषा रोगग्रस्त हो गई है। चूंकि वह द्वैत इस बुरी तरह से बैठ गया है कि जब मैं, जिसको कि कोई अंतर नहीं है दोनों में, वह भी बात करे, तो भी मुझे कहना पड़ता हैः शरीर की फिक्र करनी चाहिए। और उसमें ऐसा भ्रम पैदा होता है कि आप कोई और हैं फिक्र करने वाले और शरीर कोई और है जिसकी फिक्र करनी है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वही तो मैं कह रहा था इतनी देर से, वही तो मैं इतनी देर से कह रहा था कि अगर मेरे तीन पीढ़ियों में डायबिटीज चला आ रहा है, तो मेरे माइंड को क्या फर्क पड़ता है, इससे बॉडी को कोई मतलब नहीं है। बॉडी की हेरिडिटी तो बहुत और है और उसका अपना कांस्टीट्यूशन है। जैसे मेरे घर में बाल गिर जाते हैं पच्चीस साल के बाद सभी के, तो इससे क्या फर्क पड़ने वाला है, वह बाल मेरे गिरने वाले हैं।

मेरे तीन पीढ़ी से बाल गिरते रहे हैं और मेरे बाल गिर जाएंगे, इसमें वह जरा थोड़ा सा फर्क कर रहे हैं। विज्ञान अभी इस पर काम कर रहा है कि मेरे बच्चों के बाल नहीं भी गिरें!

वह दूसरी बात है, वह विज्ञान करेगा। वह मैं कह नहीं रहा हूं। कल यह भी हो सकता है कि बाल बिल्कुल न गिरें। पर वह विज्ञान करेगा। उससे, मेरे माइंड में जो फर्क पड़े हैं, उससे कोई संबंध नहीं है। वह विज्ञान करेगा, वह ठीक है। कल दांत न गिरें, बाल न गिरें, आदमी बूढ़ा न हो, वह सब विज्ञान कर लेगा। लेकिन विज्ञान कुछ करेगा, तब वह होगा। समझे न आप?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह जो मैं बात कर रहा हूं, यह बात ही नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं, आप यह पूछ रहे हैं कि अगर भीतर मन शांत हो जाए, इंटीग्रेटेड हो जाए, तो क्या बॉडी परफेक्ट हो जाएगी? मैं आपसे कह रहा हूं कि नहीं हो जाएगी। बॉडी को तो परफेक्ट करने के लिए, विज्ञान जो करेगा, उससे ही कुछ होगा। नहीं तो महावीर न मरें, बुद्ध न मरें, कोई न मरे। और फिर हमें झूठी कहानियां गढ़नी पड़ती हैं।

महावीर को पेचिश हो गई मरते वक्त, छह महीने तक। और बड़ा मुश्किल हो गया सवाल जैनियों के सामने कि महावीर को और दस्त लगते हैं! और इतने दस्त लगे कि उससे ही वे मरे! तो फिर कहानियां गढ़नी पड़ीं कि किसी ने जादू चला दिया है और किसी ने यह कर दिया है और किसी ने वह कर दिया है।

अब ये सब फिजूल की बातें हैं, इससे कोई मतलब नहीं है। महावीर को क्यों पेचिश नहीं हो सकती? पेचिश होना बिल्कुल और मामला है। और वह बिल्कुल ही और तल की बात है, उससे महावीर का कोई लेना-देना नहीं है।

व्हेन ए पर्सन इ.ज इंटीग्रेटेड एंड होल, ही शुड बी परफेक्ट इन आल डायमेंशंस। दैट इ.ज अवर एजम्पशन।

बिल्कुल गलत बात है। और दूसरा मामला यह है, दूसरा मामला यह है कि परफेक्शन के हमारे बड़े डेड कंसेप्ट हैं। वे भी डायनेमिक नहीं हैं, वे भी बड़े डेड कंसेप्ट हैं। अब सच बात यह है कि जब महावीर पैदा हुए हैं, तो मरेंगे। और मरना इम्परफेक्शन है, यह कौन कहता है? यानी सवाल यह है कि एक आदमी पैदा हुआ, तो परफेक्शन तो यही है कि एक सर्किल पूरा करेगा और मरेगा।

एक वृक्ष पर पत्ते लगते हैं वसंत में, तब आप कहते हैं परफेक्ट। और जब पतझड़ में सब पत्ते गिरते हैं, तब आप क्या कहते हैं--इम्परफेक्ट? यह अब भी परफेक्ट है। और परफेक्ट का मतलब यह है कि जिस तरह पूरे पत्ते खिले थे और लगे थे, उसी तरह पूरे पत्ते गिर जाएं, तो यह भी परफेक्शन है। इसमें इम्परफेक्शन कहां आ गया? अधूरे पत्ते गिर जाएं, कच्चे गिर जाएं, तो इम्परफेक्शन! नहीं तो यह भी परफेक्शन है। पैदा हुआ था वृक्ष, यह भी एक यात्रा थी परफेक्शन की; कल मरेगा, यह भी यात्रा उसी की है।

लेकिन हमारे मोह हैं!

अब जैसे समझ लो कि मेरे शरीर में एक बीमारी हो गई। मेरे शरीर में एक बीमारी हो गई और करोड़ों कीटाणु उस बीमारी में पैदा हुए हैं और वे जी रहे हैं। हमारे लिए बीमारी है। उन करोड़ों कीटाणुओं के लिए नये जीवन का आविर्भाव है। उनका आविर्भाव चल रहा है। हम कहते हैं कि यह बड़ी इम्परफेक्ट बॉडी हो गई।

हो सकता है कि पृथ्वी पर हम सब इसी तरह के कीटाणु हों, जो एक बड़ी बॉडी पर अपना पोषण कर रहे हैं। हमारी बॉडी पर भी करोड़ों कीटाणु जी रहे हैं। यह जो बाहर का सारा जगत है, इसमें परफेक्शन भी हमारी डिजायर का परफेक्शन है। यानी हमारी कामना यह है कि शरीर ऐसा हो कि बीमारी न आए। लेकिन क्यों? हमारी कामना ऐसी है कि शरीर ऐसा हो कि वृद्ध न हो। लेकिन क्यों? हमारी कामना ऐसी है कि शरीर ऐसा हो कि मरे न। लेकिन क्यों? वह जो हमारे भीतर के सब भय और सब दुख और पीड़ाएं हैं, उन सबसे बचने की हमने यह परफेक्शन की कामना की है। लेकिन क्यों?

वह जितना माइंड इंटीग्रेटेड होगा भीतर, तो शरीर परफेक्ट नहीं हो जाएगा, लेकिन शरीर का जो जैसा है, वह सब स्वीकृत हो जाएगा। एक सहज स्वीकृति उसकी भी हो जाएगी। बुढ़ापा है, तो उसकी एक सहज स्वीकृति होगी। मृत्यु है, तो उसकी एक सहज स्वीकृति होगी। और वैसा आदमी उतने ही आनंद से मरेगा, जितने आनंद से जीया था। यह तो समझ में आने वाली बात है। लेकिन मरेगा नहीं, यह निपट नासमझी की बात है। मरेगा तो ऐसे ही आनंद से मरेगा जैसे जी रहा था--उतने ही आनंद से। बीमारी में भी वह उतना ही शांत जीएगा, उसी तरह उठेगा-बैठेगा, जैसा वह स्वास्थ्य में था। यह जो भीतर उसका मन है, इसकी अगर एक स्थिति बन जाए, तो जीवन की हरेक स्थिति के प्रति एक सहजता की भाव-दशा पैदा होती है।

और शरीर पर जो कुछ होने वाला है, अगर उसमें कोई भी फर्क करना है, तो उसके लिए तो विज्ञान कुछ करेगा, उसका धर्म से कुछ भी लेना-देना नहीं है। हां, जितनी बीमारियां मन से पैदा होकर आती हैं--और बहुत बीमारियां आती हैं--वे विलीन हो जाएंगी। यानी इस बात की संभावना बहुत कम है कि उस तरह की बीमारियां आनी शुरू हों, जो मन से आती हैं। जैसे एक आदमी भयभीत है, और भयभीत होने की वजह से उसके हाथ कंप रहे हैं। अब यह नहीं होगा उसको, क्योंकि भय कहां होने वाला है उसे। वह जानने से ही...

नहीं तो हमारे मुल्क में बड़ी गलत धारणा पैदा हो गई है योग के बाबत। यह धारणा पैदा हो गई है कि वह कुछ...

शरीर की बीमारी के लिए विज्ञान है। तो धर्म किस बीमारी का इलाज है? और धर्म क्या है?

मेरा तो कहना ही यह है कि जिस दिन भीतर का विज्ञान पूरा साफ-साफ होगा, धर्म विदा हो जाएंगे, उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। धर्म जो है उसी दिशा में अवैज्ञानिक ढंग से अब तक की गई खोज-बीन का नाम है। कल अगर वैज्ञानिक दृष्टि से उस दिशा में खोज-बीन हो जाती है, धर्म वहां-वहां से विदा होता चला जाएगा। जिसे आज आप विज्ञान कह रहे हैं, कल धर्म वहां भी दावेदार था। कल वह बताता था कि पानी कब गिरेगा, और पृथ्वी चलती है कि नहीं चलती है।

आज भी धर्म की मीनिंग क्लियर नहीं है।

धर्म का हमेशा एक ही मीनिंग है। आज और कल और परसों का सवाल नहीं है। जो मैं अभी कह रहा था कि वह जो हमारा अंतर्जगत है, उस अंतर्जगत के ज्ञान की, उस अंतर्जगत को जानने की, उस अंतर्जगत को उसकी परिपूर्णता में जीने की और होने की पद्धति का नाम धर्म है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप मेरी बात नहीं समझे। मेरा कहना यह है कि जितना ज्यादा अज्ञान होगा जगत में, धर्म का क्षेत्र उतना बड़ा होगा। क्योंकि धर्म तब सब चीजों को छुएगा। फिर जैसे-जैसे जिस-जिस क्षेत्र में ज्ञान बहुत सुनिश्चित, व्यवस्थित और वैज्ञानिक होता चला जाएगा, वहां-वहां से धर्म हटता चला आएगा। कुछ क्षेत्रों से बिल्कुल हट गया। हट गया, ठीक है, वहां विज्ञान खड़ा हो गया है।

आज नहीं कल, हम भीतर भी खोज-बीन करते चले जाते हैं, और जब भीतर भी चीजें बहुत साफ और स्पष्ट हो जाएंगी, तो धर्म की वहां भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। या अगर हम उसको धर्म कहेंगे, तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में मुश्किल क्या होती है कि वेद बड़ी चीज है। वेद में हजार तरह की चीजें हैं। उसमें उस जमाने का सोशल कोड भी है, कानून भी है, उस जमाने की नीति-व्यवस्था भी है, सब कुछ है। असल बात यह है कि वेद उस जमाने की अकेली किताब है। जो भी था, सब उसमें इकट्ठा है। उसमें लोकगीत भी है, लोककथा भी है। उसमें सब इकट्ठा है। उसमें इतिहास भी है, पुराण भी है। सब इकट्ठा है। और स्वाभाविक है, क्योंकि वह प्राथमिक आदमी की चेष्टा है। पहली दफा लिखा जा रहा है, सब लिख लिया, जो भी है।

धीरे-धीरे, धीरे-धीरे स्पेशलाइजेशन होता है, चीजें टूटती हैं अलग-अलग। तो नीति अलग चली जाती है, समाजशास्त्र अलग चला जाता है, विज्ञान अलग चला जाता है, भूगोल अलग चला जाता है, ज्योतिष अलग चला जाता है। फिर सब अलग-अलग होते चले जाते हैं। इसमें धर्म की भी अपनी एक यात्रा है, जो अलग चली जाती है।

और वेद के कुछ वचन हैं जो धर्म के वचन हैं। सारा वेद धर्म नहीं है। वे वचन धर्म के हैं जो मनुष्य के अंतस-लोक से कुछ संबंध रखते हैं, वहां की जो खोज-बीन करते हैं। वहां के संबंध में उस समय के आदमी का जो अनुभव है, उसको कहते हैं। वे वचन भर धर्म हैं।

तो इंडियन पेनल कोड नहीं है धर्म। इंडियन पेनल कोड समाज की नीति-व्यवस्था है, समाज की राज-व्यवस्था है। वेद में वह भी है।

वह भी है और उसको धर्म समझा गया था अभी तक। और आज भी समझा जाता है।

वह कठिनाई क्या होती है कि वह धर्म-पुस्तक थी। धर्म-पुस्तक से उस दिन मतलब ही यह था। मैंने कहा कि जितना अज्ञान होगा, उतना धर्म सब क्षेत्रों को छुएगा।

जैसे अभी कल तक, हम कहते थे--केमिस्ट्री। तो केमिस्ट्री के सब क्षेत्र छूते थे। आज समझिए कि आर्गेनिक केमिस्ट्री अलग है और इनआर्गेनिक अलग है और कुछ अलग है। आज जिसे हम आर्गेनिक केमिस्ट्री कह रहे हैं, कल वह दस हिस्सों में टूट सकती है। और ज्ञान जैसे बढ़ता है, वैसे खंड-खंड होते चले जाते हैं। आज भी आप विज्ञान की डाक्टरेट को पीएचड़ी. की डिग्री दिए चले जा रहे हैं। वह तीन सौ साल पहले की बात है, जब आप डाक्टर ऑफ फिलॉसफी कहते थे। कोई भी आदमी... क्योंकि फिलॉसफी यानी सब कुछ था। पर अब भी आज एक आदमी केमिस्ट्री में कर रहा है पीएचड़ी. और उसको आप कहे चले जा रहे हैं डाक्टर ऑफ फिलॉसफी!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, ठीक। तो यह वैसा ही मामला है। वेद जो है, वह प्राथमिक संकलन है। सच तो यह है कि उस समय का विश्वकोश, उस समय जो जानकारी थी, सब इकट्ठी हो गई है उसमें। उसको पूरे को धर्म कहना आज गलत है। उस दिन तो ठीक रहा होगा, आज गलत है, क्योंकि उसमें से अब बहुत थोड़ा सा ही धर्म बचा। बाकी सब तो अलग हिस्सों ने ले लिया। उन्होंने अलग क्लेम कर लिया अपना-अपना। जिसको मैं धर्म कह रहा हूं, वह जो अंतस की खोज की निरंतर चेष्टा है आदमी की, उसको मैं धर्म कह रहा हूं। और मेरा मानना है कि जितना वह अंतस की खोज भी वैज्ञानिक होती चली जाए, उतना धर्म को अलग होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। एक दिन ऐसा आ सकता है कि दो तरह के विज्ञान हों--बाहर की खोज करने वाला, भीतर की खोज करने वाला। उसको चाहे विज्ञान कहो, चाहे धर्म कहो, उससे कोई अंतर नहीं पड़ने का है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

रिलीजन कहें कि साइंस कहें, यह बहुत बेमानी है। यह जो दो शब्दों का जो फासला है, वह भी पिछले अतीत इतिहास की वजह से पैदा हो गया है। हम उसे क्या कहते हैं, यह मेरे लिए बहुत मूल्य का नहीं है। हम उसे साइंस कहें कि रिलीजन कहें, कुछ भी कहें। अब तक वे दो रहे हैं। और अब तक दोनों की मेथडोलॉजी में बुनियादी फर्क रहा है। लेकिन जैसे-जैसे साइंस भी आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे एक अर्थ में रिलीजन का फील्ड सिकुड़ता चला जाता है। और ठीक है, सिकुड़ जाना चाहिए। क्योंकि उसने सारा सब कुछ घेरा हुआ था, जो उसका था ही नहीं। वह वहां से हट जाएगा। लेकिन कुछ है जो उसका है। और वह "कुछ है" से कभी हटने वाला नहीं है। वह जो कुछ है, वह उसका जो अपना है, उससे वह कभी हटने वाला नहीं है।

लेकिन मेरा मानना है कि साइंस जैसे-जैसे विकसित होती है, वह उस "कुछ" की दिशा में भी बहुत कुछ कर सकेगी। और उस हालत में, उस बिंदु पर जहां रिलीजन का कुछ अपना है, जिसको मैं मेडिटेशन कहूं, समाधि कहूं, वह उस तरह के जो सारे के सारे उसकी सब्जेक्टिविटी के जो प्रयोग हैं। साइंस का सारा का सारा प्रयोग ऑब्जेक्टिविटी के लिए है। ऑब्जेक्टिविटी है। और जो धार्मिक लोग उसे इनकार करें और माया कहें, उनको मैं समझता हूं बकवास कर रहे हैं। सब्जेक्टिविटी भी है। और जो वैज्ञानिक उसे इनकार करें और कहें कि नहीं है, मैं कहता हूं, वे बकवास कर रहे हैं। और यह बकवास एक ही चीज की रिएक्शन है। एक ने, जिसने ऑब्जेक्टिविटी को इनकार किया है, तो ऑब्जेक्टिविटी वाले को लगता है कि सब्जेक्टिविटी वगैरह कुछ भी नहीं है।

वह जो सब्जेक्टिव होना है, वह जो मेरा होना है, वह भी है। मैं जो जान रहा हूं, वह भी है; और जो जान रहा है, वह भी है। किसी न किसी अर्थ में वह है। अब इस जानने वाले को कैसे जाना जाए? निश्चित ही इसको जानने का मेथड वही नहीं हो सकता, जो ऑब्जेक्ट्स को जानने का मेथड होगा। इसके जानने के मेथड में बुनियादी फर्क पड़ेगा। क्योंकि मैं कभी भी, किसी भी स्थिति में, खुद के लिए तो ऑब्जेक्ट बन ही नहीं सकता। दूसरे के लिए मैं ऑब्जेक्ट बन सकता हूं।

तो अभी साइकोलॉजी जो कर रही है, वह मनुष्य की सब्जेक्टिविटी के साथ भी ऑब्जेक्टिव जैसा प्रयोग कर रही है। क्योंकि वह सारे के सारे मेथड साइंस के प्रयोग कर रही है। साइंस के जितने मेथड हैं, वे बेसिकली ऑब्जेक्टिव होने को बाध्य हैं। क्योंकि उसके बिना वे साइंटिफिक नहीं रह जाते, हवा में सब खो जाती है बात, कुछ पता नहीं चलता कि क्या हुआ। तो साइकोलॉजी अभी जो प्रयोग कर रही है, उसने रिलीजन का तो क्षेत्र लिया हुआ है और साइंस के मेथड लिए हुए हैं!

तो साइंस के मेथड से हम दूसरे व्यक्ति की जो सब्जेक्टिविटी है, उसको बाहर से कितना ऑब्जर्व कर सकते हैं? और उसका ऑब्जर्वेशन बिहेवियर ही हो सकता है, और तो कुछ हो नहीं सकता। बिहेवियर को ही हम ऑब्जेक्टिव बना सकते हैं। लेकिन जिसका बिहेवियर है, वह फिर छूट जाता है, वह बच जाता है, वह कहीं खिसक जाता है।

यह जो निरंतर छूट जाने वाला है, इसे जानने के लिए कुछ और ही रास्ता खोजा है धर्म ने। उसे वे मेडिटेशन कहते हैं। उसे वे यह कहते हैं कि उसे हम तब जान सकते हैं, जब कि सारे ऑब्जेक्ट चेतना से विलीन हो जाएं। ऑब्जेक्ट ही न हो, सिर्फ सब्जेक्टिविटी ही रह जाए। तो वह जो ध्यान है, अटेंशन जो है, चूंकि ऑब्जेक्ट पर अटकी हुई थी, अगर सारे ऑब्जेक्ट विलीन हो जाएं, तो वह जो अटेंशन है, वह वापस लौट आती है। क्योंकि वह कहां जाएगी? उसके लिए कोई ऑब्जेक्ट नहीं मिलता, तो वह अपने पर ही वापस लौट आती है। वह जो लौटती हुई चेतना है, वह स्वयं को अनुभव करवाती है। वह स्वयं-संवेद संभव हो पाता है।

यह जो बात है, यह बात अनिवार्य रूप से एंटी-साइंटिफिक नहीं है, नॉन-साइंटिफिक हो सकती है। यह जो बात है, यह अनिवार्य रूप से एंटी-साइंटिफिक होती, तब तो यह होता कि या तो विज्ञान जीतेगा तो फिर यह धर्म विलीन हो जाएगा और या फिर धर्म जीतेगा तो विज्ञान नहीं घुस पाएगा। इसे मैं कहता हूं कि यह नॉन-साइंटिफिक हो सकती है, एंटी-साइंटिफिक नहीं है। इसके एंटी-साइंटिफिक होने की कोई वजह नहीं है। और कल अगर विज्ञान विकास करते-करते उस जगह आता है, जहां वह यह अनुभव करता है कि जिस तरह ऑब्जेक्ट को जानने का ऑब्जेक्टिव ऑब्जर्वेशन रास्ता था, उस तरह सब्जेक्ट को जानने का सब्जेक्टिव इंट्रोस्पेक्शन और मेडिटेशन भी रास्ता हो सकता है, यह अगर विज्ञान को अनुभव होता है--और यह अनुभव होना बहुत कठिन नहीं है--तो फिर जो अनुभव अब तक हम धर्म कहते थे, उसे चाहे हम वैज्ञानिक कहने लगें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। या धर्म को विज्ञान कहने लगें, कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन मेरा मानना यह है कि चूंकि बुनियादी रूप से एक ही एनटाइटी है--ऐसा शरीर और आत्मा जैसी दो नहीं हैं, ऐसा पदार्थ और परमात्मा जैसी दो नहीं हैं, ऐसा क्रिएटर और क्रिएशन जैसी दो नहीं हैं--एक ही है, हम उसे क्या नाम देते हैं और किस तरफ से नाम देना शुरू करते हैं, यह बहुत ही औपचारिक बात है।

अगर हम विज्ञान की तरफ से नाम देना शुरू करते हैं, तो हम कल उसे कह सकेंगे कि वह विज्ञान है, भीतर का विज्ञान है। कुछ और कहेंगे--सुप्रीम साइंस कहें, इनर साइंस कहें, कुछ और नाम दे दें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। या हो सकता है हम उसे साइकोलॉजी ही कहते चले जाएं, वह स्प्रिचुओलॉजी हो जाए, कुछ और

हो जाए। यह गौण बात है। लेकिन एक बात जो गौण नहीं है, वह यह है कि एसेंशियली कुछ है हमारे भीतर, जो ठीक ऑब्जेक्टिव होने को बाध्य नहीं होता है और ऑब्जेक्ट को ट्रांसेंड करता मालूम पड़ता है। अगर वह ऑब्जेक्ट ही हो जाए, तब तो रिलीजन की कोई जगह नहीं रह जाती, बात खतम हो गई। रिलीजन जैसी चीज गलत थी, अज्ञान था। फिर साइंस रह जाती है। लेकिन अगर ऐसी कोई चीज है, व्हिच ट्रांसेंड्स नेसेसरिली दि ऑब्जेक्टिव, तो फिर रिलीजन बाकी रहेगा।

नाम बहुत गौण बात है, नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं भी पसंद करूंगा कि उसे विज्ञान ही कहा जाए, क्योंकि दो-दो नाम रखने की कोई जरूरत नहीं है। हमें जहां तक बने कम से कम कंसेप्ट से और ज्यादा से ज्यादा उपयोग लेना चाहिए। उतनी सुविधा होती है। व्यर्थ का उपद्रव बचता है, व्यर्थ की कांफ्लिक्ट बचती है।

तो इस बात की बहुत संभावना है कि धर्म जैसा शब्द भी खो जाएगा। और इसीलिए संभावना है क्योंकि वह अनावश्यक हो जाएगा। लेकिन धर्म का एसेंशियल जो कंट्रीब्यूशन है, वह खोने वाला नहीं है। बल्कि शायद जब हम पूरी तरह साइंटिफिक ढंग से उस दिशा में इंगित कर पाएंगे, तो शायद पहली दफा बुद्ध या महावीर या पतंजलि पहली बार पूरी तरह साफ हो सकेंगे हमारे लिए। क्योंकि जिस टर्मिनालॉजी में वे बोले हैं, वह साइंस की नहीं है। क्योंकि साइंस की टर्मिनालॉजी ही नहीं थी। वे जिस टर्मिनालॉजी में बोले हैं वह या तो मेटाफिजिक्स की है, या मेटाफर की है, या पोएट्री की है। आदमी मजबूर है, जो टर्मिनालॉजी उपलब्ध हो, उसी में बोलना पड़ेगा। अगर मैं हिंदी के सिवाय कोई भाषा नहीं जानता हूं, तो मजबूरी है कि मैं जो भी बोलूंगा, वह हिंदी में बोलूंगा।

आज से दो हजार साल पहले जो भाषा थी हमारे पास, काव्य की थी, कहानी की थी। इस तरह की भाषा थी। उसी भाषा में कहने की जरूरत थी। तो मेरा मानना है कि रिलीजस एक्सपीरिएंस जैसे ही हुआ, उसको पोएट्री की भाषा में ही प्रकट करना पड़ा। वह लैंग्वेज की गड़बड़ है, जो आज कांफ्लिक्ट बढ़ रही है।

और अब जब कि साइंस की भाषा विकसित हो गई--ज्यादा एग्जेक्ट, ज्यादा मैथमेटिकल, ज्यादा साफ-सुथरी--तो अब पोएट्री की भाषा में रिलीजन को प्रकट करने की कोई जरूरत नहीं रह जाने वाली है। आज नहीं कल हम साइंस की भाषा में ही रिलीजन को प्रकट कर सकेंगे। उस हालत में, जिसको हम रिलीजन कहते रहे थे आज तक, वह सब विदा हो जाएगा। हो जाना चाहिए। लेकिन रिलीजस एक्सपीरिएंस एज सच, वह विलीन होने वाला नहीं है।

और इसलिए उसको हम क्या नाम देंगे, कोई फर्क नहीं पड़ता। रिलीजन कहें, साइंस कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन वह एक्सपीरिएंस ऑब्जेक्टिव एक्सपीरिएंस से कुछ पृथक अपनी सत्ता रखता है, उसकी अपनी आथेंटिसिटी है, यह मेरा कहना है। और इसलिए वह विदा होने वाला नहीं है। वह एक्सपीरिएंस विदा होने वाला नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उसको ईच एंड एवरीबडी को प्रूव करने का न सवाल है, न प्रश्न है। वह तो जो प्रूव करना चाहे उसे उतरना पड़ेगा उस दिशा में।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, यह सवाल नहीं है। सवाल है, जो फर्क है, जो डिस्टिंगशन है, वह दूसरा है। साइंटिस्ट आज नहीं कल, जीवन क्या है, यह जान लेंगे। लेकिन जीवन को जानने की उनकी जो मेथडोलॉजी है, वह ऑब्जेक्टिव है। वे जीवन को जान लेंगे, जैसा जीवन बाहर से देखा जा सकता है, जैसा हम बाहर से ऑब्जर्व कर सकते हैं। वे जीवन को ऐसे जानेंगे, जैसा दूसरा जीवन को जानता है। लेकिन जीवन अपने में, भीतर, स्वयं कैसा अनुभव करता है, जीवंत होना कैसा है, वह साइंटिस्ट बाहर से नहीं जान पाता। वह उसकी जो सब्जेक्टिव फीलिंग है...

जैसे मैं कहूं--प्रेम है। एक फिनामिना है। बाहर से हम ऑब्जर्व करते हैं कि प्रेमी क्या करता है, क्या नहीं करता है, उसका बिहेवियर क्या है, प्रेमी के मस्तिष्क पर क्या होता है, प्रेमी के शरीर पर क्या होता है, हम सारा ऑब्जर्व करते हैं। और हम, प्रेम क्या है, इसके बाबत कुछ नतीजे लेते हैं। और वे नतीजे भी अर्थ रखते हैं। वे नतीजे ऑब्जेक्टिव हैं। लेकिन प्रेमी प्रेम करने में सब्जेक्टिवली क्या अनुभव करता है, यह हमारे ऑब्जेक्टिव ऑब्जर्वेशन से छूट जाता है, इट इ.ज बियांड दैट। और वह जो छूट जाता है, उसको जानने का ऑब्जेक्टिव कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि ऑब्जेक्टिव हम जो भी जानेंगे, वह सब्जेक्टिव फिर छूट जाएगा, बच जाएगा।

तो लाइफ को वैज्ञानिक जान लेगा कि लाइफ क्या है, कैसे बनती है, कैसे आती है, किन-किन तत्वों से मिल कर प्रकट होती है। लेकिन लिविंग होना, डेड होना और लिविंग होना...

यह तकिया पड़ा है। समझ लें कि अगर डेड है, और यह तकिया अगर लिविंग हो जाए, तो डेड होने और लिविंग होने के बीच में तकिया क्या अनुभव करता है, वह जो उसका इनर एक्सपीरिएंस है लिविंग होने का वह क्या है, वह हम बाहर से ऑब्जर्व नहीं कर पाते हैं। न उसका कोई उपाय है, न हो सकता है। क्योंकि सब्जेक्टिविटी को ऑब्जेक्टिवली नहीं जाना जा सकता। वह कंट्राडिक्शन इन टर्म्स है।

और इसलिए रिलीजन का... रिलीजन का कहना यह नहीं है, रिलीजन का मतलब भी यह नहीं है कि विज्ञान जीवन को नहीं जान सकेगा। विज्ञान जीवन को जानेगा। लेकिन फिर भी वह जानना वह जानना नहीं है जो धर्म कहता है आत्म-साक्षात्कार। वे दोनों अलग बातें हैं।

बट दिस सब्जेक्टिविटी आल्सो कैन बी ऑब्जर्व्ड!

ऑब्जेक्टिवली ही सब्जेक्टिविटी को अध्ययन करेंगे न! विज्ञान इतना करेगा। यह हो रहा है, साइकोलॉजी यह कर रही है।

अध्ययन तो सब्जेक्टिविटी का ही होगा न!

नहीं समझे आप। सब्जेक्टिवली! ये दोनों बुनियादी बातों में फर्क हो गया। डीप साइकोलॉजी जो कर रही है, वह यही कर रही है, सब्जेक्टिविटी का ऑब्जेक्टिवली अध्ययन कर रही है। लेकिन दैट स्टडी टू इ.ज नॉट सब्जेक्टिव, इट इ.ज ऑफ दि सब्जेक्टिव एंड ऑब्जेक्टिवली। बट टु अंडरस्टैंड सब्जेक्टिविटी एज ए सब्जेक्ट रिमेंस बियांड साइंस।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरा किसी से प्रेम का अनुभव एक बात है, और मेरे प्रेम का अध्ययन आप सब मिल कर करेंगे, यह बिल्कुल दूसरी बात है। प्रेम का दो तरह से अध्ययन किया जा सकता है। एक ऑब्जेक्टिवली--कि प्रेम का फिनामिना क्या है? क्या होता है प्रेम में? फिजियोलॉजिकली क्या होता है? मेंटली क्या होता है? केमिकली क्या होता है? किसके लिए, यह सवाल नहीं है। प्रेम को दो तरह से अध्ययन कर सकते हैं। ऑब्जेक्टिवली अध्ययन जो है, वह प्रेम की साइंटिफिक स्टडी होगी। लेकिन प्रेम साइंटिफिक स्टडी पर समाप्त नहीं होता, शेष रह जाता है। और वह जो कुछ शेष रह जाता है, वह जो सब्जेक्टिव फीलिंग है प्रेम की, वह पकड़ में नहीं आती। और उसको मेडिटेटिवली ही जाना जा सकता है, नहीं तो नहीं जाना जा सकता।

यानी मैं जो कह रहा हूं, वह यह कि हमारी साइंस की कितनी ही प्रोग्रेस हो, ऐसा नहीं हो जाता है कि कोई चीज छूट नहीं जाती पीछे, कुछ चीज बाकी नहीं रह जाती।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जो दूसरे के लिए मिले, वही करने योग्य है? और अपने लिए मिले, वह करने योग्य नहीं है? अगर यही क्राइटेरियन है कि जो दूसरे के लिए मिले वही करने योग्य है और अपने लिए मिले वह करने योग्य नहीं है, तब तो बात अलग है। तब तो कुछ नहीं मिला। और अगर अपने लिए मिला वह भी करने योग्य है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जब भी हम धार्मिक व्यक्ति के वक्तव्यों को ऑब्जेक्टिवली पूछने लगेंगे, तो हम करीब-करीब ऐसी भूल कर रहे हैं कि हम दो ऐसी लैंग्वेजेज को मिक्सअप कर रहे हैं, जिनका मिक्सअप होना बुनियादी रूप से गलत है--अभी।

जैसे मैं कहूंः एक आदमी कहीं से संगीत सुन कर आया और उसने हमें आकर कहा कि मैंने बहुत अदभुत संगीत सुना। हम उससे पूछते हैं, उस संगीत की सुगंध क्या थी? वह आदमी कहता है, आप क्या बात कर रहे हैं!

मैंने कभी संगीत नहीं सुना, लेकिन फूल मैंने सूंघे हैं और बगीचे का आनंद लिया है। और वह आदमी कहता है कि बहुत आनंद आया, संगीत मैंने सुना। मैं उससे पूछता हूं, संगीत की सुगंध क्या थी? वह आदमी कहता है, सुगंध? आप बड़ी इररेलेवेंट बात पूछते हैं! मैं उससे कहता हूं, थोड़ा सा संगीत तुम ले नहीं आए, जरा मैं देख लूं। वह आदमी कहे, आप पागल हो गए हैं! संगीत मैं कैसे ला सकता था, संगीत कोई लाने की बात नहीं। तो मैं उससे कहूं कि जिसमें न कोई सुगंध है, न जिसमें कोई स्वाद है, न जिसे लाया ले जाया जा सकता है, उसके होने का मतलब भी क्या है?

मैं उससे कह सकता हूं। और मैं एकदम गलत भी नहीं हूं। लेकिन मेरा जो यह सारा कहना है, एक अर्थ में इररेलेवेंट है। इररेलेवेंट इस अर्थ में है कि मेरी इन सब बातों के अतिरिक्त भी संगीत हो सकता है और उसके होने का अर्थ हो सकता है।

महावीर को क्या मिला और क्या नहीं मिला, जब हम पूछने लगते हैं, तो हम उस टर्मिनालॉजी में उत्तर चाहते हैं जो हम जानते हैं। जैसे कि आइंस्टीन को रिलेटिविटी की थ्योरी मिली, तो वह रिलेटिविटी की थ्योरी

क्या है? हम वैसे ही पूछ रहे हैं जैसे आइंस्टीन ने जो एक्सपेरिमेंट किया, उसको जो मिला, तो वह क्या है? तो वह किताब लिखी गई है। तो महावीर को जो केवल-ज्ञान मिला वह क्या है?

केवल-ज्ञान के बाबत जो भी कहा जाएगा... केवल-ज्ञान तो एक सब्जेक्टिव अनुभूति है, और जो कहा जाएगा वह ऑब्जेक्टिव एक्सप्रेशन है।

आई वुड से, कहा ही नहीं जा सकता। और कहा जा ही नहीं सकता है। उसका एक्सप्रेशन ही नहीं हो सकता। दैट इ.ज योर ज्ञान, दैट इ.ज अवर ज्ञान, दैट इ.ज व्हाट वी विल अचीव आफ्टर मेडिटेशन।

ठीक है न, यह तो आपको पता है फिर!

एनी ऑफ माई वड्र्स रिमेन सब्जेक्ट टु करेक्शन।

न, न, न। करेक्शन का नहीं। यह पता है हमें। और जरूर कहा गया है। यह भी कहा जाना है। अगर कोई केवल-ज्ञान के बाबत यह कहे कि उसे नहीं कहा जा सकता, ही हैज सेड समथिंग। और बड़ी मीनिंगफुल बात कही उसने, कोई गैर-मीनिंगफुल बात नहीं कही। विट्गिंस्टीन ने एक सेंटेंस लिखा है, आप देखे होंगे, विट्गिंस्टीन की कोई... तो टैक्टेटस में वह एक सेंटेंस लिखता हैः दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड। लेकिन वह यह नहीं कहता कि दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड इ.ज नॉट। और न वह यह कहता है कि दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड, इ.ज नॉट ए सेइंग अबाउट इट।

मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? जब हम यह कहते हैं, अगर हम किसी चीज के बाबत कहते हैं कि वह नहीं कही जा सकती, तो हमने उसके बाबत कुछ कहा। और यह कहना बहुत साधारण नहीं है। इसने कुछ इंडीकेट किया, इसने कुछ बात कही, इसने कुछ इशारा भी किया। अगर हम यह कहते हैं कि केवल-ज्ञान एक अनुभूति है, तो हमने कुछ कहा। अगर हम यह कहते हैं कि वह अनुभूति ऐसी है जो जानी ही जा सकती है, कही नहीं जा सकती, तो भी हमने कहा।

यह बड़ा मजा है! सारे धर्मग्रंथ, जिस संबंध में कहते हैं कुछ नहीं कहा जा सकता, उसी के संबंध में लिखे गए हैं।

लाओत्से अपनी किताब शुरू करता है--ताओ तेह किंग--उसमें वह लिखता है कि मैं वह कहूंगा, जो नहीं कहा जा सकता। मैं वह कहूंगा इस किताब में, जो नहीं कहा जा सकता। और इसलिए कहने से वह अनिवार्यरूपेण गलत हो जाएगा, उसके लिए क्षमा करना। कहता है--सारी बात कहता है--और यह क्षमायाचना के साथ।

मेरा कहना है कि यह क्षमायाचना भी कुछ कह रही है। वह जो एक तकलीफ है कहे जाने की, वह उसके बाबत कुछ कह रही है। कहे जाने की इच्छा है, कहा जाना चाहिए, किसी को बताना चाहिए, जो जाना है वह कहा जाना चाहिए, उसका भी तीव्र प्रवाह है। नहीं कहा जा सकता, इसका भी बोध है। और इन दोनों के बीच में जो चेष्टा चल रही है, वह भी कुछ कह रही है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरा कहना यही है कि अगर नहीं जा सकते हैं मेडिटेशन करने, तो मेडिटेशन के संबंध में हां और न के कोई जवाब मत पकड़ें। अगर नहीं जा सकते हैं, तो बकवास छोड़ें। छोड़ें उस बात को, वह अपना नहीं है काम।

अगर मैं म्युजिक की दुनिया में नहीं जा सकता हूं, तो फिजूल मैं बातें न करूं। ठीक है, बात खतम हो गई। मेरी वह दुनिया नहीं है, मुझे नहीं जाना है या जाने की सुविधा नहीं है। फिर मैं हां और न के जवाब न पकड़ूं। फिर दोनों जवाब खतरनाक हैं। या तो मैं यह कहूं कि केवल-ज्ञान है ही नहीं कुछ। यह भी गलत बात है। या फिर मैं केवल-ज्ञान के संबंध में चुप रहूं।

बट यू कांट से देअर इ.ज नथिंग।

नहीं-नहीं, मेरा कहना यह है, जो नहीं जा सकता, जैसे आप अगर केमिस्ट्री के बाबत नहीं गए हैं कुछ अध्ययन करने, तो आप चुप तो रहते हैं कम से कम। आप कुछ कहते तो नहीं हैं। अगर आप गणित के बाबत नहीं गए हैं और हायर मैथमेटिक्स से आपका कुछ संबंध नहीं है, तो आप कम से कम चुप तो हैं। इतनी ईमानदारी भी धर्म के संबंध में नहीं बरती जा रही है।

पर अभी वह चुप रहने का जमाना भी नहीं है। जो सुना है, जो समझ में नहीं आता है उसको मान लेना भी और उसको...

यह कौन कहता है? मैं कहां कहता हूं!

वह तो अनुभव की बात है!

मैं तो दिन-रात यही कह रहा हूं, मैं तो दिन-रात यही कह रहा हूं।

समझो कि मैं नहीं जा रहा हूं...

तो चुप रह जाइए आप, हां-न मत करिए।

चुप रहने की अब जरूरत नहीं है।

तो क्या करिएगा? कुछ न कुछ कहिएगा मेडिटेशन के बाबत, बिना जाए? मेरा कहना यह है कि अगर मेडिटेशन में नहीं जा सकते हैं तो सीखिए।

आज समझो कि मैं ड्राइविंग नहीं जानता...

इतना तय है कि ड्राइविंग सीखिए, और फिर गाड़ी ले लीजिए। तो मेडिटेशन सीखिए और फिर चल पड़िए।

वह तो मैं तभी सीखूं व्हेन आई सी दैट एवरीबडी इ.ज ड्राइविंग दि कार एंड इट इ.ज सेफर।

समझा मैं, समझा मैं। तो आप देखिए महावीर को, बुद्ध को। खोज करिए कि ये सेफर हैं या नहीं।

मेरा कहना क्या है कि एक भी एग्जाम्पल बताइए कि मेडिटेशन से उसको यह मिला और उसने बताया कि यह हो सकता है...

क्यों परेशान होते हैं? एग्जाम्पल तो मैं हूं। पर आप क्यों परेशान होते हैं? और मैं दूसरा एग्जाम्पल कहां से लाऊं? और उसका क्या मतलब है? उससे क्या प्रयोजन है?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ऐसी स्थिति में जहां कि सब अर्थहीनता हो जाती है, मन बहुत करता है कि कहीं भी पकड़ लो, कहीं भी गुजर जाओ, बाहर निकल जाओ, पीछे लौट जाओ, आगे चले जाओ। नहीं जाना है। जम कर ही बैठ जाना है संदेह पर। तो एक ट्रांसेंडेंस आती है, जो अपने से आती है, उसको तो लाने का सवाल ही नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो कुछ है जो इनडुबिटेबल है आपके लिए। और वह आपको ट्रांसेंड नहीं करने देगा।

आखिर ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो डाउट के योग्य न हो। ऐसी कोई धारणा ही नहीं है जो डाउट के योग्य न हो। इनडुबिटेबल जैसा कुछ हो ही नहीं सकता। सेल्फ इविडेंट भी कुछ नहीं है। और जैसे ही आपने कुछ माना, कि कहीं न कहीं आपका मीनिंग रूट पकड़े हुए है और कहीं न कहीं आप आस्थावान हैं। आस्था क्या है, यह बहुत सवाल नहीं है।

और मेरा मानना है कि अगर आस्था थोड़ी भी है, तो डाउट के पार आप कभी नहीं हो पाएंगे। क्योंकि वह जो आस्था है, डाउट को कभी भी टोटल नहीं होने देगी। डाउट को टोटल नहीं होने देगी। आपके डाउट में एक कमी रह गई। और वह कमी छोटी कमी नहीं है। यानी एक अर्थ में आप डाउट की परेशानी से गुजर ही नहीं रहे हैं। कुछ है, जहां डाउट नहीं है। और आप निश्चिंत वहां खड़े हुए हैं। डाउट से पूरी तरह गुजरना, कि एक भी ऐसी बात न रह गई जो संदेह के परे है। संदेह भी न रह गया संदेह के परे।

पांचवां प्रवचन

खोलो नये ऊर्जा द्वार

कोई भी काम टेंशन पैदा कर रहा है, कोई भी काम ऊब पैदा कर रहा है। काम सवाल ही नहीं है। हम कैसे काम को लेते हैं--यह सवाल है। हमारा एटिट्यूड क्या है। काम तो सब बोरिंग हैं। रोज रिपिटीटिव हैं। वही तुम्हें फिर करना पड़ेगा--चाहे दफ्तर जाओ, चाहे पढ़ाने जाओ, चाहे फैक्ट्री में जाओ, चाहे मजदूरी करो। रोज वही काम करना पड़ेगा। और एक बंधे हुए घेरे में रोज घूमना पड़ेगा। वह उबाने वाला हो ही जाएगा। पुनरुक्ति ऊबाती है, रिपीटीशन बोर्डम है। इसलिए यह तो सवाल ही नहीं है।

और रोज काम बदलोगे तो जिंदगी मुश्किल में पड़ जाएगी। और रोज-रोज काम बदला, तो बदलना भी रिपिटीटिव हो जाएगा, वह भी उबाने लगेगा। जो भी चीज दोहरने लगेगी, वह उबाने वाली हो जाएगी।

अब दो ही रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि इधर ऊबो और इधर ऊब को भुलाने के लिए कुछ करते रहो, जैसे आमतौर से आदमी करता है। दिन भर ऊबता है, शाम को पिक्चर देख लेता है। दिन भर ऊबा, रात को सितार सुन लिया। दिन भर ऊबा, नाच लिया, खेल खेल आया। इधर ऊबा, इधर कुछ कर लिया जिससे कि बैलेंस हो जाए।

मगर इससे कुछ ऊब मिटती नहीं; क्योंकि वह खेल, वह पिक्चर भी रोज नया हो, नहीं तो फिर उबाने वाला हो जाएगा। कोई भी चीज दोहराओगे, तो उबाने वाली हो जाएगी। और रोज नया कैसे करोगे? रोज नया कहां से लाओगे? इसलिए काम तो पुराना ही होगा, लेकिन तुम रोज नये हो सकते हो। तुम भी पुराने, काम भी पुराना--तो ऊब जाओगे। दो उपाय हैं। या तो काम रोज नया हो, तो तुम नहीं ऊबोगे। लेकिन रोज नया काम कैसे संभव है? असंभव है। लेकिन तुम रोज नये हो सकते हो।

इसलिए बहुत गहरे में दृष्टि की बात है। तुम जो काम करते हो, उसमें तुम्हें रोज नया होना चाहिए। हम खुद ही पुराने पड़ जाते हैं। आज तुम क्लास में पढ़ाने जाओगे--वही लड़के होंगे, वही किताब होगी, वही कमरा होगा, लेकिन तुम्हारी एप्रोच आज फिर नई हो सकती है। लेकिन तुम खुद ही नया नहीं करोगे। क्योंकि कल वाला जो तुमने पढ़ाया था, पिछले साल जो पढ़ाया था, वही पढ़ाना तुमको भी सुविधाजनक लगेगा--कि उसी तरह फिर पढ़ा दो और मामला खतम कर दो। कनवीनिएंट भी वही लगेगा--कि अपने को मालूम है, वही पढ़ा दो। तो तुम ऊब जाने वाले हो।

तुम एक कमरे में गए हो, बीस लड़कों का तुमने मुकाबला किया है, वे तुम्हारे सामने खड़े हैं। अब तुम फिर से नया शुरू करते हो।

खाना भी रोज वही खाओगे, लेकिन रोज खाते वक्त तुम नये हो सकते हो। और नये होने के दो-तीन उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि बीते कल को भूल जाओ। उसको याद रखोगे, तो रिपीटीशन मालूम पड़ेगा। सुबह तुमने जो खाना खाया, सांझ को वही खाओगे। अगर सुबह का खाना भूल ही गया, अब तुम फिर खाने पर इस तरह आ गए हो कि जैसे यह बिल्कुल नया है, तो रिपीटीशन का सवाल नहीं है।

दूसरी बात यह है कि जो भी तुम कर रहे हो, उसे अगर तुम पुराना ही मान कर कर रहे हो, तो उसमें रस ले ही नहीं सकते। आज फिर नई थिरक लेकर जाना चाहिए कक्षा में। पता नहीं क्या प्रश्न पूछा जाए? कौन सी बात उठे? और तैयार नहीं होना चाहिए कभी। तैयार आदमी हमेशा ऊब जाएगा। तुम अगर कक्षा में गए हो

पढ़ाने, और तैयारी पहले से तुम्हारी है कि यह-यह मुझे पढ़ाना है। तुम ऊब ही जाओगे। क्योंकि जब तुम तैयार हो, तो तुम कक्षा में सिर्फ रिपीट कर रहे हो, वह जो तुमने तैयार कर लिया है।

तैयार कभी मत जाओ। जिंदगी को हमेशा अनप्रिपेअर्ड! कभी नहीं ऊबोगे, ऊबने का सवाल ही नहीं है; क्योंकि रोज नया प्रॉब्लम हो जाएगा, रोज नई मुश्किल में पड़ जाओगे, रोज नया सवाल होगा, जो हल भी नहीं हो सकता है। हो सकता है कक्षा में तुम्हें कहना पड़े कि यह तो मैं जानता ही नहीं।

लेकिन कोई शिक्षक यह कहने की हिम्मत नहीं जुटाता कि यह मैं नहीं जानता। छोटे बच्चों के सामने वह यह अकड़ लिए चला जाता है कि हम जानते हैं। ऊबेगा नहीं तो क्या करेगा! यह हो सकता है कि तुम्हें कहना पड़े कि यह तो मैं जानता ही नहीं, यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। मैं भी सोचता हूं, तुम भी सोचो। देखें क्या होता है!

मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम? जिंदगी की हर चीज को अगर तुम पूरे तैयार होकर जाकर तुमने मुकाबला किया, तो तुम बासा मुकाबला ही कर रहे हो। जैसे तुम मुझसे मिलने आए, और तुम घर से सवाल तैयार करके लाए, तुम घर से सोच कर लाए कि यह अपना सवाल पूछना है। तो वह सवाल तुम्हारे मन में दोहर चुका दो-चार दफा। अब आकर तुम उसे फिर यहां दोहरा रहे हो।

नहीं; तुम आ गए, तुम कोई सवाल लेकर नहीं आए, मेरे पास बैठ गए, और खोजा कि कोई सवाल है? और हुआ और कोई निकल गया। हो सकता है उसके शब्द ठीक न बनें; हो सकता है तुम समझा भी न पाओ कि यह मेरा सवाल है; लेकिन तब तुमको भी उसमें उतना ही रस होगा। जितना मेरे लिए वह नया होगा, तुम्हारे लिए भी उतना ही नया होगा। तुम भी डिस्कवर कर रहे हो अपने भीतर कि यह सवाल है। थोड़ी देर लगेगी, थोड़ी कठिनाई होगी। लेकिन बोर्डम नहीं हो सकती।

तो एक तो जिंदगी की जितनी ज्यादा परिस्थितियों में हम नये ढंग से खड़े हो सकें, पुराने हम न जाएं वहां, पुराने हम वहां न जाएं। तुमने एक गीत पढ़ा हो, जब पढ़ते थे। आज तुम फिर बच्चों को समझा रहे हो उसका अर्थ। तो तुम वही अर्थ समझा रहे हो जो तुमको पढ़ाया गया था। तो तुम ऊब ही जाने वाले हो। कोई आदमी मशीन नहीं होना चाहता। मशीन हुआ कि ऊब जाएगा। तो तुम फिर से सोचो कि यह अर्थ हो सकता है? कि कुछ और हो सकता है? तुम फिर से जूझो इससे। इसको नया सवाल बनाओ। जिंदगी को अगर हम प्रतिपल... और जिंदगी नई है। अगर हम नये होने की क्षमता रखें, तो जिंदगी प्रतिपल नई है।

हम अवैज्ञानिक हैं।

मतलब?

जैसे कि मेरा एक विषय है, मैं इसको समझता हूं अच्छी तरह से और मैं इसको पढ़ाए चला जाता हूं।

न, न, न। इसको भी तुम वैज्ञानिक बना ले सकते हो। इसको भी तुम वैज्ञानिक बना ले सकते हो। इसमें भी इतनी गहराइयों में उतर सकते हो और इतने नये अर्थ खोज ला सकते हो जिसका कि कोई सवाल नहीं है।

और दूसरा, कोई काम ऐसा नहीं है जो वैज्ञानिक है या अवैज्ञानिक है। वैज्ञानिक या अवैज्ञानिक बुद्धि के प्रयोग का सवाल है। वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी कहीं भी वैज्ञानिक ढंग से व्यवहार करना शुरू करेगा। अवैज्ञानिक बुद्धि के आदमी को तुम विज्ञान भी पढ़ाओ, तो भी अवैज्ञानिक ढंग से ही पकड़ेगा। तो तुम यह तो...

जैसे संस्कृत है...

यह सवाल नहीं है। संस्कृत को भी समझने की कोशिश करो, उसमें भी उतरने की कोशिश करो, उसके भी नये अर्थ खोजो। अर्थ कोई बंधा हुआ नहीं है कहीं, हमारी खोज पर निर्भर है।

इसी के बारे में पूछा गया था। आपने जो बताया कि रोज नई तरह से नया आदमी बन कर इस चीज को देख सकता हूं। सवाल यह है कि जब मैं पुरानी बात लेकर आता हूं तो मेरा आत्मविश्वास होता है कि मैं इसे अच्छी तरह से जानता हूं, मैं इसे ठीक तरह से हल कर सकूंगा। यह आत्मविश्वास नहीं होता मेरे दिल में, तो नई चीज से मुझे डर लगेगा। तो सवाल तो आत्मविश्वास का है। अगर मुझे आत्मविश्वास है कि कोई भी नई चीज आए, मैं उसे हल कर सकूंगा, तो मैं हमेशा नया रहूंगा।

न, न, न। यह सवाल ही नहीं है। हल कर सकूं या न कर सकूं, यह सवाल नहीं है। नहीं भी कर सकते हो, यह जरूरी नहीं है। नहीं भी कर सकते हो, यह जरूरी नहीं है। असल में इस आत्मविश्वास का ख्याल रखोगे, तो तुम नये हो ही नहीं पाओगे। क्योंकि आत्मविश्वास हमेशा पुराने के साथ होता है, नये के साथ कभी हो ही नहीं सकता। नया हमेशा इनसिक्योर है ही।

लेकिन वह जब परिस्थिति होती है न। आत्मविश्वास नहीं है, समझिए मैं बिल्कुल अनजानी जगह चला जाता हूं, फिर भी आदत होती है कि नई जगह पर भी गया... मैं देहात कभी नहीं गया, अभी अगर मैं जाना चाहूं, तो मुझे पुरानी आदत है, और कम से कम आत्मविश्वास की तरह जाऊंगा कि मैं अपना रास्ता खोज लूंगा, अपनी रोटी खोज लूंगा, कुछ न कुछ कर लूंगा...

हां, यह जो आत्मविश्वास है न, यह हमेशा पुराने के साथ ही होगा। क्योंकि पुराने से तुम परिचित हो, तुम कई बार कर चुके हो वही। तो तुम जानते हो, तुम कर लोगे।

अगर इस आत्मविश्वास को जोर से पकड़ा, तो तुम नये कभी हो ही नहीं सकोगे, बोर्डम आने वाली है। जानना चाहिए कि जिंदगी इनसिक्योरिटी है, वहां हार पूरी संभव है सदा। और वहां हो सकता है रास्ता खो जाए और न खोज पाऊं। कोशिश करूंगा! बस कोशिश करने का ख्याल होना चाहिए। कोशिश करूंगा! हार भी सकता हूं, भटक भी सकता हूं। और अगर हमने यह पक्का कर लिया कि मुझे जीतना ही है, भटकना नहीं है, खोजना ही है, तो फिर तुम पुराने से चिपक जाओगे।

नहीं, ओशो, बात क्या होती है कि हमारा मन एक या दो स्थिति में होता है। या तो मुझे लगता है कि मैं उसे हल कर सकूंगा या तो मुझे डर होता है कि मैं हल नहीं कर सकूंगा...

कोई हर्जा नहीं। दूसरी बात बेहतर है।

फिर भी डर ही लगता है।

हां, लगने दो डर।

तो डर के मारे कुछ भी नहीं कर सकूंगा। पैरालाइज पहले ही हो जाता हूं न।

न-न, ऐसा नहीं है। डर लगता है, तो हमें जानना चाहिए कि जिंदगी का हिस्सा है डर। एक अंकुर निकल रहा है बीज से। बीज के भीतर तो बहुत सुरक्षित था। खतरे में जा रहा है। एक अंकुर, कोमल अंकुर निकल रहा है। कोई पत्थर गिर जाएगा और मर जाएगा। कोई पक्षी आकर ता.ेड कर ले जाएगा। कोई बच्चा मरोड़ देगा। तूफान होंगे, हवा होगी, धूप होगी, पानी बरसेगा, ओले गिरेंगे। एक छोटा सा अंकुर उठ रहा है। भय तो पूरा है, कुछ भी तोड़ सकता है। बीज के भीतर बिल्कुल सुरक्षित था।

वह तो मां के पेट से बच्चा बाहर आया कि भय की दुनिया शुरू हुई। खतरा तो पूरे ही दिन है, रोज रिस्क है। अभी लौट कर घर जाओगे, क्या पता पत्नी मिलती है कि नहीं मिलती! या जा चुकी हो! खतरा तो है ही। लेकिन हम पक्का मन में किए बैठे हैं कि नहीं, मेरी पत्नी ऐसा कभी नहीं कर सकती।

तो वह जो है वह सिर्फ हम अपना पकड़े हुए बैठे हैं। कोई पक्का भरोसा नहीं है कि तुम लौट कर जाओगे, घर बचेगा कि आग लग गई होगी। क्या पक्का है? रोज आग लगती है; रोज पत्नियां चली जाती हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह हमें स्वीकृत होना चाहिए कि ये सब खतरे जीवन का हिस्सा हैं। खतरे से बचोगे तो मर जाओगे; क्योंकि खतरे से बचना मरने का सवाल है।

लेकिन भय से पहले से ही हम ऐसे पैरालाइज्ड होते हैं कि पांव तो रखना पड़ता है, एक कदम आगे बढ़ना पड़ता है।

एक कदम आगे बढ़ोगे तो पूरी तरह यह जानते हुए बढ़ना पड़ेगा कि भय है, खतरा है, जोखिम है। जहां पैर खड़ा था, हो सकता है वह जगह भी खो जाए, और जहां हम पैर रख रहे हैं वह जगह हो ही न! यह हेजिटेशन मौजूद रहेगा ही। और इसकी सहज स्वीकृति होनी चाहिए कि यह जिंदगी का हिस्सा है। और अगर नहीं खतरा लेना है, तो पुरानी जगह खड़े रहो। वहां ऊब जाओगे। और ध्यान रहे कि जहां जितना कम खतरा है, वहां उतनी ज्यादा ऊब होगी। इसलिए जब कोई समाज बहुत ऊब जाता है, तो खतरे की तलाश करता है। फिर डेंजर खोजता है।

अब अभी अमेरिका में, मुझे कोई कहता था, एक नया खेल चला हुआ है, कि दोनों तरफ से कारों को दौड़ाएंगे, एक-एक व्हील को एक पट्टी पर--पट्टी बना लेंगे व्हाइट, स्ट्रिप--इस कार के दो व्हील इस स्ट्रिप पर होंगे, उस कार के भी दो व्हील स्ट्रिप पर होंगे। अब टकराना निश्चित है। तो कौन पहले स्ट्रिप से नीचे उतर जाता है, वह हार गया। अब सौ मील की रफ्तार से दोनों गाड़ियां दौड़ी हुई चली आ रही हैं। वह गाड़ी चली आ

रही है, यह गाड़ी चली आ रही है। अब कौन पहले हट जाता है? कौन घबड़ा जाता है पहले? जो घबड़ा गया, जो हट गया, स्ट्रिप से नीचे उतर गया, वह हार गया। लाखों रुपये का दांव लगाए हुए हैं।

अब यह खतरे की खोज चल रही है। जिंदगी इतनी बोरिंग हो गई है कि खतरे की खोज चल रही है। अगर बहुत गौर से देखो तो चांद पर जाने में, एवरेस्ट पर चढ़ने में, सब खतरे की खोज है। साधारण जिंदगी बिल्कुल खतरे से मुक्त कर ली है हमने। सब इनसिक्योरिटी खतम कर दी है। सिक्योरिटी है, बैंक बैलेंस है, बीमा है, मरो तो भी खतरा नहीं है, सब इंतजाम कर लिया है पूरा का पूरा। नौकरी पक्की है। नौकरी छूटेगी तो पेंशन मिलेगी, सब पक्का कर लिया है। पत्नी बिल्कुल पक्की है, कसम खिला ली है कि बस जन्म भर हमको छोड़ोगी नहीं, हम तुमको नहीं छोड़ेंगे। सब पक्का कर लिया है बिल्कुल मजबूत। अब इसमें खतरा बिल्कुल खतम हो गया, जोखिम बिल्कुल नहीं रही। तो जिंदगी बोरिंग हो गई है।

एक जंगली आदमी की भी जिंदगी हमसे बेहतर जिंदगी थी, इस अर्थों में कि खतरा प्रतिपल था। और खतरे की सहज स्वीकृति थी। न कोई बैंक था, न कोई बीमा था, न पत्नी का भरोसा था, न घर का भरोसा था, न जिंदगी का भरोसा था। तो एक जिंदगी में पुलक थी। वह जानवर की जिंदगी में अब भी वही पुलक है। तो जानवर में जो ताजगी मालूम पड़ती है--एक हिरन को देखो तो ताजगी मालूम पड़ती है। मगर हिरन कितना चौंका हुआ है! कितना भयभीत है! जरा सा पत्ता हिलता है, और वह चौंक गया। भागने की तैयारी है।

मेरा मानना यह है कि दो ही उपाय हैंः या तो खतरे को स्वीकार करो या बोरियत को।

लेकिन स्वीकृति के पहले, खतरा आने के पहले जो पैरालिसिस जो आ जाती है न...

वह पैरालिसिस इसलिए आती है कि तुम खतरे को स्वीकार ही नहीं करना चाहते। मैं कहता हूं कि दो ही विकल्प हैं--डेंजर है या बोर्डम है। तीसरा कोई विकल्प है नहीं। तो बोर्डम से राजी हो जाओ। मेरा मतलब यह है कि फिर बोर्डम से राजी हो जाओ। बोर्डम से राजी हो नहीं सकते। बोर्डम से छूटना चाहते हो। और बोर्डम से छूट नहीं सकते जब तक खतरे को उठाओ न! मेरा मतलब समझ रहे हैं न?

हां, वही चक्कर चलता रहता है।

तो इसमें साफ हो जाना चाहिए। फिर बोर्डम को सहो। तो थोड़े दिन बोर्डम को सहो। मान लो कि भई खतरा मैं उठा नहीं सकता, बोर्डम सहेंगे। तो थोड़े दिन में पता चलेगा कि यह बोर्डम तो हम सह नहीं सकते। तो खतरा उठाओ! जिंदगी में आखिर करेंगे क्या? हम क्या चाहते हैं--न बोर्डम हो, न खतरा हो! ऐसा नहीं हो सकता। असंभव है। मेरी बात समझ रहे हैं न?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह और गहरा हो, तो सेक्सुअल एक्ट सेक्सुअल रहेगा, साथ ही और भी कुछ हो जाएगा। समथिंग विल बी एडेड।

यह एडेड को भी तो जबरदस्ती लाइएगा।

नहीं, मैं तो नहीं कहता कि आप लाइए। मैं तो कहता हूं, किसी को करना हो करे, नहीं करना हो न करे। यह सवाल ही नहीं है। यानी मैं आपसे कहूं कि लाइए, तब तो सवाल है। आपको लगता हो कि यह लाने जैसा लगता है...

नहीं, मैं सोचूं कि आज्ञा-चक्र पर कनसनट्रेट करूं...

नहीं, आप सोचें क्यों? आपको लगे ऐसा कि यह मेरी एक अंतर-खोज मालूम होती है...

अंतर-खोज तो मुझे भी करनी है।

तो फिर जबरदस्ती कैसे हो रही है?

जबरदस्ती इस तरह से कि आई डोंट नो एग्जेक्टली कि इसको आज्ञा-चक्र के ऊपर कनसनट्रेट करने से क्या होगा...

यह तो करने से ही पता चलेगा।

हां, ठीक है। वहां तक तो आपकी बातों को हमें मानना पड़ेगा।

न, न, न। वह भी इसीलिए आप मानते हैं कि आप कुछ करना चाहते हैं उस तरफ। नहीं तो नहीं। नहीं तो सवाल नहीं है। और अगर जबरदस्ती करता हुआ मालूम पड़े, तो मत करिए।

तो जब मैं आज्ञा-चक्र के ऊपर कनसनट्रेट करूं, तो आई डोंट फील दि एक्साइटमेंट ऑफ सेक्स एक्ट।

अभी किया कहां है आपने?

नहीं, थोड़ा सा जो किया है...

न, न, न। बिल्कुल नहीं किया है। अभी सिर्फ किताब पढ़ी है आपने! आपने बिल्कुल नहीं किया है। इसको तो थोड़ा करिए, कम से कम चार-छह महीने दस-पच्चीस प्रयोग तो करिए।

यू मे नॉट फील एक्साइटमेंट एट आल!

वह फर्क तो पड़ने ही वाला है। क्योंकि सेक्सुअल एक्साइटमेंट तो चला जाएगा, सेक्सुअल डेप्थ पैदा होगी। एक्साइटमेंट डेप्थ की बात ही नहीं है। एक्साइटमेंट तो चला जाएगा। एक्साइटमेंट तो बहुत ऊपरी चीज है।

तो प्रॉब्लम तो साल्व नहीं होता।

न, न, न। मैं कहां कह रहा हूं! अगर आप सेक्स से बचना चाहते हैं और सेक्स आपका प्रॉब्लम है, तो मैं यह कह ही नहीं रहा।

मैं तो यह कह रहा हूं कि सेक्स के बाबत जो हमारी गलत दृष्टि है, वह उसको पूरी गहराई तक नहीं उपलब्ध होने देती। और पूरी गहराई तक वह उपलब्ध हो जाए, तो सेक्सुअल एक्ट बिल्कुल नये मीनिंग ले लेता है, जिनका हमें कोई पता ही नहीं है। और सेक्सुअल एक्ट साथ ही मेडिटेशन का हिस्सा बन जाता है, जिसका हमें कोई पता नहीं है। और तब धीरे-धीरे सेक्स से तो मुक्त हो जाएंगे आप, कोई और नई गहराइयां शुरू हो जाएंगी।

अगर सेक्स से मुक्त होने का डर हो, तो घबड़ाहट पैदा होगी आपको, क्योंकि एक्साइटमेंट तो जाने वाला है।

आखिर में एक्ट भी जा सकता है?

यह भी संभव है आखिर में। यह भी संभव है आखिर में।

मेरा तो प्रॉब्लम सेक्स है। मैं इससे दूर जाना चाहता हूं, पार जाना चाहता हूं। अब सवाल यह हैः हाऊ टु स्टार्ट फ्रॉम देयर? मान लो कोई मुझे कहे कि जिंदगी भर सेलिबेट रहिए। मैं कहता हूं कि यह नहीं हो सकता है।

अब यह प्रॉब्लम किस तरह से साल्व हो?

प्रॉब्लम क्या है?

इट इ.ज दि प्रॉब्लम!

प्रॉब्लम क्या है सेक्स में?

इट इ.ज ए डिवास्टेटिंग पैटर्न!

क्या डिवास्टेटिंग है?

फिजिकली इट इ.ज डिवास्टेटिंग।

जरा भी नहीं है।

एंड इट हैज ग्रेट साइकोलॉजिकल इंप्लीकेशंस।

वे सब पैदा किए हुए हैं।

वे सब पैदा किए हुए हैं, बट दे क्रिएट प्रॉब्लम।

जरा भी नहीं। क्या प्रॉब्लम?

समझिए। आई फील सम फिजिकल अट्रैक्शन टुवर्ड्स हर। इफ आई जस्ट फालो इट, तो डंडे पड़ेंगे।

डंडे पड़ने की तैयारी रखनी चाहिए। कुछ चुकाना पड़ेगा न। कि ऐसे ही मिल जाएगा सब!

मैं मर तो सकता हूं न उसमें।

तो आपको चुनाव करना है न।

चुनाव तो मैंने कई बार किया...

तो आपकी सोसाइटी गलत है, जो आपको ऐसी दिक्कत देती है। आप ऐसी सोसाइटी बनाने की कोशिश करिए...

एज ए मैरीड मैन, आपका जो सुझाव है आज्ञा-चक्र पर कनसनट्रेट करने का, मैं प्रयोग करूंगा, लेकिन...

उसको थोड़ा प्रयोग करके देखिए। और अगर प्रयोग करने में आपको कोई तकलीफ मालूम पड़े... उसको एक चार-छह महीने प्रयोग करके देखिए। इसके पहले कुछ बात करने का बहुत मतलब हल नहीं होता है।

मैं थोड़ा सा प्रयोग करके कह रहा हूं।

नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि चार-छह महीने प्रयोग करके देखिए। हो सकता है कि पहले एक्साइटमेंट चला जाए। एक्ट करना भी मुश्किल हो जाए, यह भी हो सकता है। लेकिन चार-छह महीने पूरा प्रयोग करके देखिए। क्योंकि है क्या मामला हमारा, हमारा माइंड जैसा है वह उससे जरा भी बदलने को राजी नहीं होता। तो माइंड की बदलाहट जिन प्रयोगों से भी हो सकती है, माइंड सब तरह से रेसिस्ट करता है। वह पच्चीस विरोध

दिखलाएगा और पच्चीस गलतियां दिखलाएगा--यह नहीं हो सकता, वह नहीं हो सकता; यह ऐसा हो जाएगा, वह वैसा हो जाएगा। पच्चीस फियर खड़े करेगा। वह माइंड का हिस्सा है। यह फियर क्या है? फियर यही है कि कहीं सेक्सुअल एक्ट खतम न हो जाए!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझा, मैं आपकी बात समझा। प्रयोग करके थोड़ा देखें। और एक किताब है एलन वाट की--नेचर, मैन एंड वुमेन। वह भी थोड़ा देख जाएं। और पूरा एक्सपेरिमेंट कर डालें।

देयर आर सो मेनी फिजियोलॉजिकल कैटेगरीज। तो किस कैटेगरी को यह एप्लाई करता है?

आप उसके लिए भी फ्रेडर, एक जर्मन विचारक की "सेक्स परफेक्शन" पूरी किताब देख डालें, ताकि डिटेल्स में पूरा फिजियोलॉजिकल, और पूरा सारा ख्याल आ जाए। ये दो किताबें आप देख जाएं।

लेकिन आपने तो कहा अपने लेक्चर में कि यू हैव टु गो थ्रू दि एक्सपीरिएंस!

न, न, न। वह तो मेरे एक्सपीरिएंस की बात है। लेकिन डिटेल्स में आपको समझने की बात है, वह तो बहुत लोग प्रयोग कर रहे हैं सारी दुनिया में, बहुत तलों पर प्रयोग हो रहे हैं।

लेकिन जहां तक आपके अनुभव का निष्कर्ष है...

मैं समझा। उतनी लंबी बात नहीं करना चाहता हूं, इसलिए आपको किताब सुझा रहा हूं। मैं उतनी लंबी बात नहीं करना चाहता हूं, इसलिए किताब सुझा रहा हूं कि यह पूरा देख जाएं, तो आपको डिटेल्स में पूरा ख्याल आ जाए। और इन्होंने जो काम किया है, वह तो चूंकि सेक्सुओलॉजिस्ट ही है, यह फ्रेडर जो है, उसने खुद सारी प्रिमिटिव कौमों के बीच रह कर, कोई बीस आदिम ट्राइब्स के बीच रह कर बहुत से प्रयोग किए हैं।

और आपके विचारों से जुड़ता है वह।

बहुत मेल खाता है, एकदम मेल खाता है। मैं इसी ख्याल से कह रहा हूं कि मेरी बात समझने में आपको बहुत सहयोगी हो जाएगा। वे दोनों आप देख लेंगे, तो बात करनी बहुत आसान हो जाएगी। वह तो ख्याल में रह जाएगी। और फ्रेडर, मैं भिजवा दूंगा नाम पूरा। वह थोड़ा देख लेंगे पूरा।

हुआ क्या है असल में कि सेक्स के बाबत हमारा जानना बिल्कुल ही नहीं है, बिल्कुल ही नहीं है। तो नहीं जानने की वजह से पच्चीस प्रॉब्लम खड़े होते हैं, वे हमारे ख्याल में ही नहीं हैं। अब जैसे हमारे ख्याल में, सभी के ख्याल में हिंदुस्तान में आमतौर से यह बात है कि सेक्सुअल एक्ट जो है, वह डिवास्टेटिंग है।

अब यह फिजियोलॉजिकली बिल्कुल गलत है, एकदम गलत है। बल्कि सेक्सुअल इनएक्टिविटी डिवास्टेटिंग है। एक्टिविटी तो डिवास्टेटिंग नहीं है। और यह भी मजे की बात है कि कोई सोचता हो कि हम सेक्सुअल एक्ट एक्सट्रीम पर कर सकते हैं, तो वह गलती में है। बॉडी के बिल्कुल ही चेक हैं। आप एक्सट्रीम पर कर ही नहीं सकते। बॉडिली चेक हैं उस पर। यानी वह प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि आप कभी अतिरिक्त शक्ति निकाल ही नहीं सकते शरीर के बाहर।

लेकिन मिसयूज तो कर सकते हैं न!

मिसयूज भी नहीं कर सकते हैं। अगर आप पूरी की पूरी समझदारी का उपयोग करें--जितना सेक्स के बाबत जाना गया है, वह यह है कि मिसयूज भी नहीं कर सकते आप। मिसयूज भी इम्पासिबल है।

तब फिर सेक्स का ही क्यों, किसी का भी मिसयूज नहीं कर सकते। इफ वी एक्सटेंड दैट वेरी आर्ग्युमेंट, यू कांट मिसयूज एनीथिंग!

न-न, बहुत सी चीजों का मिसयूज कर सकते हैं।

सेक्स का क्यों मिसयूज नहीं कर सकते? क्योंकि सेक्स की जो सारी व्यवस्था है, वह चूंकि बहुत गहरे में बायोलॉजी की है और उसके एंड्स बहुत और हैं। आपके सुख-दुख से उसका मतलब बहुत ज्यादा नहीं है। वह तो पूरी की पूरी संतति और जनन की प्रक्रिया जारी रखने की बहुत गहरी व्यवस्था है वहां। आप पर नहीं छोड़ा गया है मामला। वह तो आपके जो हार्मोन्स हैं, उनके भीतर जिसको हम कहें कि उनके भीतर प्रोग्रेम है पूरा का पूरा कि वह आपसे क्या एक्ट लेना है, और कितना लेना है, और कितना जरूरी है, और कितना आपसे लिया जा सकता है। वह सब आपका जिसको--वह जो इनर मेकेनिज्म है हार्मोन का, जो आपके पिता से मिला है, आपकी मां से मिला है, उसमें सारा प्रोग्रेम है पूरा का पूरा। वह प्रोग्रेम पूरा का पूरा कार्य करेगा। आप कुछ कर नहीं रहे हैं ज्यादा। सिर्फ आपको भ्रम पैदा होता है कि मैं कर रहा हूं। वह तो पूरा प्रोग्रेम आपके भीतर अनफोल्ड हो रहा है और उसमें सारा इंतजाम रखा हुआ है।

जैसे आप ज्यादा खाना खा सकते हैं। ज्यादा खाना आप खा सकते हैं, मिसयूज हो सकता है। आप ज्यादा शराब पी सकते हैं। आप चाहें तो तीस दिन तक बिल्कुल खाना न खाएं, यह भी आप कर सकते हैं। लेकिन ये बहुत ऊपर की घटनाएं हैं। बायोलॉजी का मामला और गहरा है, और गहरा है।

पर मैं साइकोलॉजिकली मिसयूज तो कर सकता हूं न! फॉर दि मेंटल इमेजिनेशन।

यह जो मामला है न, यह सिर्फ सेक्स सप्रेशन की वजह से डायवर्शन शुरू होते हैं। ज्यादा की वजह से नहीं। चूंकि हमने जो सोसाइटी बनाई है वह सेक्स सप्रेसिव है, तो हर आदमी को सेक्स की जितनी जरूरत है, वह जो इनर प्रोग्रेम है आपकी बॉडी का, उसको पूरा नहीं होने देते हैं, तो वह सारा का सारा सप्रेस्ड सेक्स बहुत से हिस्सों में फैलना शुरू होता है, वह मेंटल बन जाता है।

वह मेंटल जो बन रहा है वह कारण यह नहीं है कि आप ज्यादा सेक्सुअल हैं, कारण यह है कि जितना सेक्सुअल होने की आपकी नीड है, उतना सोसाइटी आपको मौका नहीं दे रही है। और सोसाइटी सब तरफ से आपको बांधे हुए है। उस बंधन की वजह से सेक्स निकल नहीं पा रहा है बायोलॉजिकली, तो वह मेंटल भी हुआ जा रहा है, वह और तलों पर भी प्रवेश कर रहा है।

वह आपके कपड़ों में भी निकल रहा है, आपके उठने-बैठने के ढंग में भी जाहिर हो रहा है, आपके खाने-पीने में भी--सब तरफ; आपके मकान की बनावट में, आपके आर्किटेक्चर में--वह सब जगह घुस रहा है; आपकी पेंटिंग में, फोटोग्राफी में, सिनेमा में--वह सब जगह घुस रहा है। और उसका कुल कारण इतना है कि जहां से उसको निकलना चाहिए था, जो उसका सहज मार्ग था, वह सब तरफ से रोक दिया है। उसकी रुकावट की वजह से वह और रास्ते खोज रहा है निकलने के।

ये अगर किसी भी दिन हम एक सेक्स फ्री सोसाइटी बना लें, तो सेक्स एक्ट ऐसा साधारण एक्ट हो जाएगा, जैसे आप खाना खा लेते हैं, पानी पी लेते हैं।

ये सारी कलाएं खतम हो जाएंगी?

और दूसरे ढंग की कलाएं पैदा हो सकेंगी। ये कलाएं तो खतम हो जाएंगी, ये तो खतम हो जाएंगी, बिल्कुल ही खतम हो जाएंगी। क्योंकि ये कलाएं तो सेक्स रिप्रेशन से ही पैदा हुई हैं पूरी की पूरी। लेकिन और कलाएं पैदा हो जाएंगी; क्योंकि आदमी को कला पैदा करने की एक इनर नीड है।

जैसे समझ लें, एक आदमी भूखा है। भूखे आदमी से कहो--पेंट करो! तो भूखा आदमी रोटी की पेंटिंग बना देगा। एक भूखे आदमी को कहो पेंट करो, उसको भूखा रखो और कह दो, तो वह जो पेंटिंग करेगा उसमें उसकी भूख उतर आएगी। अब एक आदमी यह कहे कि अगर इसको हमने खाना दे दिया, तो फिर पेंटिंग बंद हो जाएगी। मैं कहूंगा कि पेंटिंग बंद नहीं होगी, सिर्फ रोटी की पेंटिंग बंद हो जाएगी। पेंटिंग के बंद होने का कोई कारण नहीं आता, पेंटिंग नये तल खोजेगी, नये मार्ग खोजेगी।

सारी सेक्सुअल एनर्जी अगर सेक्स एक्ट में चली गई, तो क्या दूसरी एनर्जी बचेगी जो कला का सृजन करे?

सच बात यह है, सच बात यह है कि जितना सेक्सुअल एक्ट सरल, सहज और आनंदपूर्ण होगा, इनर किस्म का होगा, उतना तुम मुक्तमना और ज्यादा एनर्जीफुल अनुभव करोगे--उतने ही मुक्तमना और ज्यादा एनर्जीफुल। सेक्स एनर्जी नष्ट नहीं कर रहा है तुम्हारी। सेक्स एनर्जी नष्ट नहीं कर रहा है तुम्हारी।

तो यह ब्रह्मचर्य की जो परंपरा थी कि शक्ति का संचय हो, इसकी वजह से...

अत्यंत अवैज्ञानिक था।

तो संत पुरुष जो सेक्सुअल नार्मल एक्ट में अपनी एनर्जी करेगा वही अच्छा संत बन सकेगा। आज के जो संत हैं, उसमें अच्छा तो वही होगा कि नार्मल सेक्सुअल लाइफ लीड करे।

अगर हम कभी भी सेक्स के बाबत वैज्ञानिक बुद्धि को उपलब्ध हुए, तो दुनिया में पुराने संतों से बहुत अच्छे संत पैदा हो सकेंगे।

जैसे कला में फर्क पड़ेगा, वैसे ही संतों की परंपरा में भी फर्क पड़ेगा?

हर दिशा में फर्क पड़ेगा। बहुत फर्क पड़ेगा।

असल में हमारे पुराने जो संत हैं, उनमें सौ में से नब्बे, और बल्कि निन्यानबे संत तो ऐसे हैं जो साइकोपैथ हैं। जिनकी अगर हम जांच-पड़ताल करेंगे, तो हम उनको किसी न किसी तरह का मनोरुग्ण पाएंगे। उनको स्वस्थ हम पा नहीं सकते हैं। क्योंकि उनकी सारी जो व्यवस्था है साधना की, वह जरा भी वैज्ञानिक नहीं है, सब अवैज्ञानिक है। और उसको दबाने के लिए उनको क्या-क्या करना पड़ रहा है, वह हमारे ख्याल में नहीं है, वह हमको नहीं दिखाई पड़ता।

अब एक व्यक्ति को सेक्स को रिप्रेस करने के लिए उपवास करने पड़ रहे हैं। क्योंकि बॉडी में एनर्जी गई कि वह सेक्स फार्मेशन शुरू होता है। इधर सेक्स फार्मेशन उसको करना नहीं है, वह एनर्जी का। तो उसको इतने कमजोर तल पर जीना चाहिए, इतने कमजोर तल पर, कि बॉडी की पूरी नीड पूरी न हो पाएं, ताकि सेक्स एनर्जी पैदा न हो। तो उसको बेचारे को बिल्कुल रुग्ण हालत में जीना पड़ रहा है। बिल्कुल उस तल पर कि बस वह उठने-बैठने, बात करने में शक्ति खतम हो जाए, इतना खाना ले ले वह। इससे ज्यादा शक्ति बची, तो उसका सेक्स कनवर्शन होने वाला है। तो वह इस तल पर जीएगा बिल्कुल ही। हम कहेंगे--तपश्चर्या कर रहा है!

और उसकी तकलीफ क्या है? यानी इस तल पर तो वह जी लेगा, सेक्स एनर्जी तो पैदा नहीं होगी, लेकिन सेक्सुअल माइंड कहां चला जाएगा?

सेक्स एनर्जी फिजियोलॉजिकल है। वह उसकी जो प्लानिंग और व्यवस्था है, वह सारे माइंड से जुड़ी हुई है। माइंड सेक्सुअल बना रहेगा। इस कमजोर, फीवरिश माइंड में सेक्स इमेजेज बननी शुरू होंगी। एनर्जी तो होती नहीं, एनर्जी पैदा नहीं कर रहा है वह। अब सिर्फ फीवरिश इमेजेज आनी शुरू होंगी।

जो तुम पढ़ते हो संतों-महात्माओं की कथाएं कि वे तपश्चर्या कर रहे हैं, अप्सराएं उन्हें सता रही हैं। वे अप्सराएं कहीं से आती नहीं हैं। वे उनकी इमेज हैं। और फीवरिश माइंड को इमेज इतनी सच्ची मालूम पड़ती है कि उसको लगता है कि यह औरत नंगी होकर आ गई है। कोई औरत आई-वाई नहीं है। किसी अप्सरा को कोई मतलब नहीं है किसी संत से और कोई प्रयोजन नहीं है। न कोई अप्सरा है कहीं। मगर इसका फीवरिश माइंड है। शरीर की शक्ति कम है, कमजोर है बिल्कुल। जैसे बुखार में एक आदमी कई दिन भूखा पड़ा रहा है, तो उसको चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं ढेर तरह की।

ये सारे हमले शैतान के और परियों के--वह सब इसके माइंड का ख्याल है। और इस कमजोर आदमी के पास अब इतनी ही ताकत है कि यह सिर्फ इमेज देख सकता है, और कर कुछ भी नहीं सकता है।

तब फिर एक दूसरा सवाल उठता है कि ऐसा बताया गया है कि जिसमें ज्यादा सेक्सुअल एनर्जी होती है, वे कुछ न कुछ कर सकते हैं। लेकिन बहुत से लोग हैं, उसमें तो वैरायटी होगी। किसी में कम एनर्जी होगी, किसी में ज्यादा होगी, किसी में उससे भी ज्यादा होगी, सुपरमैन में और भी ज्यादा होगी। और वह जो एनर्जी सप्रेस की जाती है, उसी वजह से सुपरमैन हो सकते हैं। ऐसी जो परंपरा और विचार है...

यह अब तक की धारणा रही है। मैं नहीं मानता हूं। मैं मानता हूं सप्रेशन से कोई सुपरमैन नहीं होता है। लेकिन सुपरमैन होने के डायमेंशंस हैं। अगर वे खुल जाएं, तो जो एनर्जी सेक्स की तरफ प्रवाहित होती है, वह नये डायमेंशन में प्रवाहित होनी शुरू हो जाती है।

मेरा सवाल यह था कि कम सेक्सुअल एनर्जी है, वह भी अच्छा संत बन सकता है। और ज्यादा सेक्सुअल एनर्जी है, वह भी बन सकता है। तो सेक्स एनर्जी की वजह से कोई फर्क नहीं पड़ेगा?

न-न, फर्क पड़ेगा, फर्क पड़ेगा। फर्क पड़ने का कारण जो है वह यह है कि सामान्यतया दस आदमी हैं, असल में इसमें जो जितना ज्यादा स्वस्थ है बॉडी से, उसके पास उतनी ही सेक्सुअल एनर्जी ज्यादा होगी साधारणतया। उसमें जो जितना स्वस्थ व्यक्ति है। अगर सामान्य रूप से स्वस्थ हैं सारे लोग, तो जो जितना ज्यादा स्वस्थ है, वह उतना ज्यादा सेक्सुअल एनर्जी से भरा हुआ आदमी होगा। क्योंकि सेक्सुअल एनर्जी और कुछ नहीं है, तुम्हारे शरीर के स्वास्थ्य से निचुड़ा हुआ एक हिस्सा है। आम आदमी के पास जो एनर्जी है, प्रकृति उसका काम संतति को उत्पन्न करने में ला रही है। स्वस्थ आदमी के पास वह ज्यादा है सामान्यतया। यह जो ज्यादा होना है, यह सिर्फ स्वस्थ होने का सबूत है। स्वस्थ होने का सबूत है।

और भी किसी दिशा में कोई आदमी जाए, तो भी कमजोर आदमी की बजाय स्वस्थ आदमी ही जा सकेगा, और किसी दिशा में भी, क्योंकि ताकत सब जगह लगानी पड़ेगी। तो ज्यादा सेक्सुअल एनर्जी का आदमी सिर्फ प्रतीक है इस बात का कि वह ज्यादा स्वस्थ है। और अभी उसकी जिस तरह सेक्सुअल एनर्जी में उसका स्वास्थ्य लग रहा है, अगर कल उसका स्वास्थ्य किसी और आयाम पर, किसी और डायमेंशन में लग जाए, तो हमारे पास जो एनर्जी का सोर्स है वह सेक्सुअल नहीं है। सेक्सुअलिटी एनर्जी के सोर्स का एक द्वार है। ओरिजिनल सोर्स सिर्फ एनर्जी है। हमारे भीतर सिर्फ एनर्जी है। उसका एक दरवाजा सेक्स है, जिससे वह बहती है। अगर हमने और कोई दरवाजे नहीं खोले हैं, तो वह सेक्स के द्वार से ही बहती रहेगी। और न बहे तो बहुत खतरनाक है। क्योंकि एनर्जी इकट्ठी हो जाए तो उत्पीड़क हो जाएगी। तब वह द्वार-दरवाजे खटखटाएगी और दीवालें तोड़ेगी और बेचैनी पैदा करेगी।

तो अगर कोई और दरवाजा नहीं खुला है, तो मैं कहता हूं, सेक्स का जो नेचरल द्वार है, जो प्रकृति ने खोला हुआ है। आपको खुला हुआ मिला है। वह गिवेन डोर है। वह आपने नहीं खोला है। वह प्रकृति से मिला हुआ दरवाजा है। और दरवाजे भी इस एनर्जी के रिजर्वायर के आस-पास हैं। इन दरवाजों को जो खोलें, तो एनर्जी वही है, लेकिन अगर वह और दरवाजों से बहनी शुरू हो जाए, तो सेक्स के दरवाजे पर जाने की संभावना कम होती चली जाती है।

लेकिन अगर दरवाजे ऐसे हों, दरवाजे अगर ऐसे हों कि फिर भी सेक्स के आनंद की जरूरत शेष रह जाए... जैसे एक आदमी पेंटिंग कर रहा है, और एक दरवाजा खुला है जो हमको नहीं लगता कि दरवाजा है।

एक आदमी पेंट करते वक्त उतनी ही तल्लीनता को उपलब्ध हो सकता है, जितना सेक्सुअल एक्ट में कोई हो सकता है। हमको नहीं लगता, जिनको पेंटिंग से कोई मतलब नहीं है। एक आदमी सितार बजाते वक्त घंटे भर में उसी तल्लीनता में पहुंच सकता है, जितना सेक्सुअल एक्ट में कोई पहुंचता है। हमको नहीं लगता। हमको तो सिर्फ सितार ठोंक रहा है वह आदमी। और अगर वह सिर्फ टेक्नीशियन है, तो वह नहीं पहुंचेगा। अगर वह सिर्फ शिल्प सीख लिया है सितार बजाने का, तो वह नहीं पहुंचेगा। लेकिन अगर उसका अंतर-भाव है, और सितार के साथ वह लीन हो गया है पूरा का पूरा, तो इस घंटे भर में उसकी एनर्जी का जो अपशोषण होगा, वह जो एनर्जी बहेगी, यह एनर्जी सेक्स की तरफ जाने की क्षमता को कम करेगी। और अगर वह कोई ऐसी दिशा में लगा हुआ है कि जिससे सेक्स का कोई विरोध नहीं है, या सेक्स में जो एनर्जी जो आनंद देती है, वह उसको उस मार्ग से आनंद नहीं मिल रहा है, तो वह लौट-लौट कर सेक्स पर आ जाएगा।

इसीलिए मैं कहता हूं कि ध्यान जैसा जो मार्ग है, वह ठीक डायमेट्रिकली सेक्स से उलटा खड़ा हुआ है। ध्यान का जो द्वार है, वह ठीक उलटा द्वार है। और सेक्स से ज्यादा आनंद देने वाला द्वार है। वह अगर एक दफा खुल जाए, तो तुम्हारी सारी एनर्जी वहां से बहनी शुरू हो जाती है, और सेक्स का द्वार सहज ही अनयूटिलाइज्ड पड़ा रह जाता है। तुम उसके विरोध में खड़े नहीं हो जाते, तुम उसको बंद भी नहीं करते हो, तुम चिल्ला कर उसका इनकार भी नहीं करते हो, तुम सप्रेस भी नहीं करते हो।

एनर्जी है हमारे पास। वह सेक्सुअल भी नहीं है, वह मेंटल भी नहीं है, वह बॉडिली भी नहीं है--एनर्जी एज सच। और वह सब तरफ से बहती है। बॉडिली भी वही है, मेंटल भी वही बनती है, सेक्सुअल भी वही बनती है। आमतौर से हमारे पास सेक्स का द्वार, माइंड का द्वार, बॉडी का द्वार है। ये द्वार सामान्य हैं। इनमें सेक्स का द्वार सर्वाधिक सुखद है। और सुखद होने का कारण है। नहीं तो सेक्सुअल एक्ट असंभव हो जाए। यानी अगर समझ लें कि किसी भी दिन हम ऐसा आदमी पैदा कर सकें कि सेक्सुअल एक्ट से सुख निकल जाए, सिर्फ एक्ट रह जाए, तो इस जमीन पर एक आदमी, एक औरत को सेक्सुअल एक्ट के लिए राजी नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक्ट एज सच एब्सर्ड है। यानी एक्ट में कुछ भी नहीं है मामला। उसके साथ जो सुख का अंतर-भाव जुड़ा है, वह उसी की वजह से वह एब्सर्ड एक्ट चल पाता है। और इसीलिए जैसे ही एक्ट खतम हुआ, आदमी कुछ परेशान और चिंतित सा लौटता हुआ मालूम पड़ता है। क्योंकि सुख तो खो जाता है, पीछे एक्ट ही रह जाता है। और एक्ट में कोई मतलब नहीं है। और एक्ट ऐसा बेहूदा है कि अर्थपूर्ण नहीं मालूम पड़ता।

तो हिप्नोसिस एक्ट कराए जा रहा है।

हां, तो एक नेचरल हिप्नोसिस है पीछे। नेचरल हिप्नोसिस है, जो बहुत जोर से डाली गई है। उसी हिप्नोसिस की वजह से वह द्वार है। अगर उसमें सुख न रह जाए, तो कुछ भी मतलब नहीं मालूम पड़ता। और गहरी हिप्नोसिस न रह जाए, तो कुछ मतलब नहीं मालूम पड़ता। अगर आपको इससे बड़े सुख के द्वार मिलने शुरू हो जाएं, तो यह हिप्नोसिस टूटनी शुरू हो जाती है।

अब दूसरी बात यह है कि हमारा यह सेक्स एनर्जी शब्द का प्रयोग ही कुछ गलत हो जाता है। टोटल एनर्जी है। सेक्स एनर्जी तो उसका एक भाव हुआ, जैसे थॉट की एनर्जी या कोई भी एनर्जी। जब सेक्स एनर्जी

कहते हैं, तो सारी परंपरा, यहां की और वेस्ट की, दोनों कहते हैं कि सेक्स एनर्जी कुछ अलग चीज है, और इसकी ही वजह से आप कुछ न कुछ कर सकते हैं।

नहीं, वह गलत ही धारणा है, मेरी दृष्टि में एकदम गलत धारणा है। एनर्जी टोटल है।

तो यह कहा जाए कि सेक्स एनर्जी तो एटिट्यूड है, उसको प्रिजर्व करने से...

एक द्वार है, एक द्वार है। और जिन्होंने प्रिजर्व करने की बात कही है, वे भी उसी भूल में हैं। वे भी मानते हैं कि दूसरा कोई द्वार नहीं है।

तो आखिर कौन सी एनर्जी प्रिजर्व करनी चाहिए?

एनर्जी प्रिजर्व करनी चाहिए। लेकिन अकेली एनर्जी प्रिजर्व करना भी मीनिंगलेस है। यानी असल में एनर्जी प्रिजर्व करके भी क्या करोगे? एनर्जी क्रिएटिव करनी चाहिए। एनर्जी क्रिएटिव होती चली जाए।

जैसे कोई खाने जैसी बात होती--यानी भूख है तब तक खाऊं, उससे ज्यादा खाया तो सिर्फ बदहजमी या तकलीफ होगी। तो मतलब यह रोकने की बात हुई न! सारी एनर्जी को...

कोई एनर्जी रोकने की बात नहीं है। इतना ही ध्यान रखने की बात है कि एनर्जी कैसे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ मार्ग, सुंदर से सुंदर मार्ग, अधिकतम ब्लिसफुल, अधिकतम आनंदपूर्ण मार्ग खोजती चली जाए। और एक क्षण हमारी एनर्जी ऐसा मार्ग खोज ले, जो हिप्नोटिक नहीं है, यानी जिसमें सुख सिर्फ कल्पना नहीं है, जिसमें सुख एक सत्य है। हमारी एनर्जी एक ऐसा मार्ग खोज रही है, और ऐसा मार्ग खोजने में सफल हो जाए, जहां कि आनंद वास्तविक है, सिर्फ काल्पनिक नहीं है और किसी हिप्नोसिस की वजह से मालूम नहीं पड़ रहा है, है! तो हमारी सारी खोज वही चल रही है। उस खोज में बहुत द्वार हमारे बंद हैं। यानी मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत से पोटेंशियल डोर्स लिए हुए है, जो खुले हुए नहीं हैं।

जैसे कि सेक्स एक्ट के बारे में यह नेचरल हिप्नोसिस हो गया है। सेक्सुअल एनर्जी के बारे में सोशल हिप्नोसिस हो गया है कि सारी एनर्जी तो सेक्स...

यह तो गलत ही बात है।

इसमें ब्रह्मचर्य शब्द भी इतना निकम्मा हो जाएगा...

न, न, न, निकम्मा शब्द नहीं हो जाएगा, निकम्मी ब्रह्मचर्य की पुरानी धारणा हो जाएगी।

इसके सेक्स एनर्जी के साथ जो संबंध हैं...

कोई भी संबंध नहीं हैं। कोई भी संबंध नहीं हैं।

तो हम सिर्फ एनर्जी की बात करें। सेक्स की बात नहीं करें।

करनी ही नहीं चाहिए। लेकिन हमारी जो धारणाएं बंधी हुई हैं, उनसे लड़ते वक्त सारी बात करनी जरूरी हो जाती है। ब्रह्मचर्य की धारणा और अर्थ ले लेगी।

मेरे मन में ब्रह्मचर्य की धारणा का इतना ही अर्थ है--वैसे ब्रह्मचर्य शब्द का भी वही मतलब है--उसका मतलब ही यह है कि ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। अगर कहीं कोई ब्रह्म है, तो वह जैसा आचरण करता हो, ऐसा आचरण, उस शब्द का अर्थ है। उसका वीर्य इत्यादि से कोई संबंध ही नहीं है, शब्द का भी। और मौलिक धारणा का भी कोई संबंध नहीं है। लेकिन होता क्या है, बड़ी से बड़ी धारणा, लोकमानस में अत्यंत छोटे अर्थ लेकर प्रकट होती है।

वीर्य ही एनर्जी है, ऐसा कहते हैं। तो ऐसा कुछ भी नहींहै?

हां, कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है। हमारी एनर्जी का एक डायवर्शन वह है। और प्रकृति के लिए बिल्कुल जरूरी है, इसलिए प्रकृति उसको फोर्सफुली उपयोग करती है। यानी अगर आप प्रकृति के खिलाफ लड़ोगे, तो वह आपको तोड़ डालेगी। वह आपको तोड़ डालेगी, हिला देगी। वह आपसे जबरदस्ती काम ले ही लेगी। और प्रकृति की जरूरत है कि वह आपको खतम नहीं करना चाहती। आप मर जाओ, कोई फिक्र नहीं है। लेकिन जो जीवन-धारा है, वह बनी रहे। वह जीवन-धारा सूख न जाए, इसलिए गहरी हिप्नोसिस उसके साथ जुड़ी हुई है।

एक ही स्थिति में व्यक्ति मुक्त होता है इस बात से--और प्रकृति उसको मुक्त कर देती है एकदम--कि जीवन-धारा किसी और बड़े तल पर संक्रमित हो जाए शरीर के तल से। तो उस व्यक्ति के भीतर जो सेक्स की कशिश है, ग्रेविटेशन है, वह एकदम विलीन हो जाता है, एकदम विलीन हो जाता है। उसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूं।

मैं ब्रह्मचर्य का मतलब यह नहीं मानता हूं कि किसी ने सेक्स को रोक लिया है तो ब्रह्मचारी हो गया। वह सिर्फ रुका हुआ सेक्सुअल है। सिर्फ रुका हुआ सेक्सुअल है। यानी वह काम-शक्ति अवरुद्ध और काम-शक्ति बही हुई--ऐसे दो रूप हैं। और अवरुद्ध काम-शक्ति ज्यादा खतरनाक है बजाय बहे हुए के। यह बहा हुआ कम से कम प्राकृतिक है, अवरुद्ध बिल्कुल अप्राकृतिक है। एक तीसरी दशा है--अवरुद्ध नहीं है, नया द्वार बहने का मिला है। तो जिस दिन ब्रह्म की तरफ सारी शक्ति बहने लगे, जिस दिन वह ब्रह्म की तरफ सारी शक्ति प्रवाहित हो जाए, उस दिन फिर कहीं वह प्रवाहित नहीं होती, कारण नहीं रह जाता है। लेकिन इसमें कोई सप्रेशन नहीं है, न ख्याल है, न विचार है।

नहीं, यह तो सोशल हिप्नोसिस है न। मगर यह सेक्स एनर्जी ही सेक्सुअल है, ऐसा कुछ ख्याल सारी किताबों में रहा है--आयुर्वेद का ख्याल, वैदिक का ख्याल...

सभी का यह ख्याल रहा है। वह बिल्कुल गलत है।

यह बात आपकी उनसे बिल्कुल उलटी है--कि एनर्जी ही है।

एकदम ही उलटी है। एनर्जी ही है हमारे पास।

तब तो फिर ये सारे सवाल ही टूट जाएंगे। यह सारी बात फिर से समझनी पड़े।

पूरी बात करनी पड़े न। असल में एक दफा ऐसा करें, अगली दफा ब्रह्मचर्य पर ही पूरी सीरीज रख लें, पूरी सीरीज ही। चार लेक्चर और चार क्वेश्चन-आंसर पूरे हो सकें।

छठवां प्रवचन

अश्लीलताः नैतिकता का फल

प्रश्न यह है कि चित्रों में, पोस्टर्स वगैरह में अश्लील चीजें पेश की जाती हैं। तो लोग अश्लील हैं, यानी पोस्टर्स से, इनसे नहीं बदले हैं, मगर वे खुद अश्लील हैं ही। इसलिए वे जो चित्र वगैरह में ले आते हैं। तो मेरा सवाल यह है कि यह जो कार्य-कारण संबंध है वह एकमार्गी नहीं है, द्विमार्गी है। हो सकता है कि लोग थोड़े अश्लील हों, अश्लील चीजें पसंद करते हों। मगर ये चित्र, ये पोस्टर्स, ये फिल्म वगैरह उस अश्लीलता को और ज्यादा बढ़ाएं, कुछ ऐसा पेश करते हैं। तो इसलिए सिर्फ लोगों की अश्लीलता यही कारण है, मगर दूसरी तरफ से वह कार्य-कारण संबंध जो है, द्विमार्गी चलता है। इसलिए अगर कोई कहे कि फिल्म और पोस्टर बढ़ा रहे होंगे या अश्लीलता कम की जानी चाहिए...

वे मित्र पूछ रहे हैं कि ऐसा मैंने कहा कि लोग अश्लील हैं, उनके मन की मांग अश्लीलता की है, इसीलिए अश्लील चित्र, फिल्में, गीत उन्हें पसंद पड़ते हैं। मित्र पूछ रहे हैं कि यह संबंध दोहरा हो सकता है। यह हो सकता है कि अश्लील चित्रों, फिल्मों और गीतों को सुन कर उनमें अश्लीलता भी पैदा होती हो।

यदि अश्लीलता सुन कर, देख कर पैदा होती हो तो यह कहना पड़ेगा कि अश्लीलता अप्रकट होगी, पोटेंशियल होगी, थोड़ी-बहुत छिपी होगी स्वयं उनसे, जो फिल्मों और चित्रों को देख कर प्रकट हो गई है। लेकिन चित्र और फिल्म अश्लीलता पैदा नहीं कर सकते हैं। ज्यादा से ज्यादा दो बातें हो सकती हैं। पहली तो जो मैं कहता हूं कि हमारे मन की मांग है, वे मांग की पूर्ति करते हैं।

यह हो सकता है कि जितनी हमारे मन की मांग हो उतनी हमको भी पता न हो। बहुत सी मांग हमारे सामने भी जाहिर न हो, अचेतन हो, अनकांशस हो। तो जब हम नंगे चित्र को देखें, तो जो हमें पता नहीं था, उतनी मांग और जग जाए। लेकिन वह जगना भी हमारे भीतर ही छिपा हुआ है। वह कोई फिल्म, नंगी फिल्म देख कर पैदा नहीं हो जाने वाला है। मनुष्य के मन में बहुत सा उसके सामने ही प्रकट नहीं है, जो किन्हीं बहानों और मौकों को पाकर प्रकट हो सकता है।

इसलिए मैं कहूंगा कि फिल्म बंद करने का सवाल नहीं है और न गंदे चित्र बंद करने का सवाल है। अगर गंदे चित्र बंद भी कर दिए, तो भी जो अश्लीलता छिपी है, न हो प्रकट, तो भी मौजूद है। और चाहे अचेतन में मौजूद हो, उसकी क्रिया हमारे जीवन के बहुत व्यवहारों को आंदोलित और प्रभावित करती ही रहेगी। और हमारी खोज भी जारी रहेगी।

आकस्मिक नहीं है अश्लील चित्रों का बन जाना। हमारी मांग की पूर्ति है। और फिर कुछ समझदार लोग देख लेते हैं कि मांग किस बात की है। उसका व्यावसायिक फायदा भी उठाया जा सकता है। वे उसका व्यावसायिक फायदा भी उठा रहे हैं।

पर ऐसा मुझे नहीं दिखाई पड़ता है कि हमारे चित्त में जो छिपा न हो, मौजूद न हो, वह कोई अश्लील किताब पढ़ कर हममें पैदा हो जाए। और यह भी मजा है कि अगर हमारे भीतर छिपा हो, तो जो अश्लील नहीं भी है वह भी हमें अश्लील दिखाई पड़ सकता है।

गांधी जी की आत्मकथा तो कोई अश्लील नहीं कहेगा। लेकिन जब गांधी जी ने आत्मकथा लिखी तो अनेक लोगों ने पत्र लिखे कि आपकी किताब अश्लील है, हमें पढ़ कर कामोत्तेजना हो जाती है। तो कृपा करके ये-ये हिस्से अपनी आत्मकथा से अलग कर दीजिए। गांधी जी तो बहुत हैरान हुए। और गांधी जी के आस-पास के लोग भी बहुत हैरान हुए कि गांधी जी की आत्मकथा भी अश्लील उत्तेजना किसी को देती हो!

तो ख्याल यही पड़ा कि जिनके मन में छिपा हुआ बहुत हो, तो सामने अश्लीलता न भी हो, थोड़ा सा इशारा भी मिल जाए, तो भी भीतर की अश्लीलता जग जा सकती है। और अगर भीतर चित्त परिपूर्ण रूप से अश्लीलता से मुक्त हुआ हो, तो कोई भी चित्र, नग्न स्त्री भी बेमानी है।

तांत्रिकों ने बहुत गहरे प्रयोग इस संबंध में किए हैं। संभवतः दुनिया में किसी और ने नहीं किए। लेकिन उन प्रयोगों को तो हमने इस मुल्क में सब तरफ से, जड़-मूल से काट डाला है। उनका गहरा से गहरा प्रयोग यह था कि अगर नग्न स्त्री के सामने पुरुष चिंतन करे, ध्यान करे, तो उसके भीतर जो नग्न स्त्री की मांग छिपी है, वह धीरे-धीरे तिरोहित हो जाती है। और एक क्षण आ सकता है कि उसके चेतन-अचेतन में नग्न स्त्री की कोई मांग न रह जाए। उस दिन उस आदमी के लिए कोई नग्न चित्र और नग्न गीत कोई अर्थ नहीं रखेगा।

लेकिन हमारे सबके भीतर मांग छिपी हुई है। छिपी हुई मांग दो तरह की है--एक तो जो थोड़ी-बहुत हमें ज्ञात होती है, और एक जो हमें भी अज्ञात होती है। नग्न चित्र इतना काम कर सकते हैं कि जो हमें अज्ञात है, उसे भी ज्ञात कर दें; लेकिन वे पैदा नहीं करते हैं। ऐसी मेरी समझ है। यह गलत हो सकती है। लेकिन ऐसी मेरी समझ है कि कोई चित्र, कोई फिल्म, कोई गीत, कोई कविता, कोई उपन्यास, जो हममें नहीं छिपा है उसे पैदा नहीं कर दे सकता है। कहीं हममें छिपा हुआ कोई हिस्सा उभर कर आ सकता है, प्रकट हो सकता है।

इसलिए मैंने कहा था कि नग्न चित्र और तस्वीरें बंद करने की जरूरत नहीं है, बल्कि मनुष्य के मन में नग्न की मांग क्यों है, अश्लील की मांग क्यों है--उसे हम समझें और उस मांग को मिटाने की कोशिश करें, तो शायद अपने आप व्यर्थ हो जाएं नग्न तस्वीरें।

लेकिन हमारा जो प्यूरिटन माइंड है, वह जो हजारों साल से हमको परेशान किए हुए है... और सच तो यह है कि उस प्यूरिटन माइंड की वजह से ही अश्लीलता हममें पैदा हुई है। उसने जितना हमें दबाने को कहा है, जितना बदलने को कहा है, जितना रोकने को कहा है, उतना हम अश्लील होते चले गए हैं। वह माइंड, वह चित्त हमसे कहता है कि नहीं, नग्न चित्र नहीं, नग्न मूर्ति नहीं, गीत नहीं, शब्द नहीं, कोई भी नहीं। लेकिन उससे कुछ मिटता नहीं। इधर से मिटाओ, नीचे के रास्तों से नग्न चित्र चलने शुरू हो जाते हैं। चोरी से बिकेंगे। बाथरूम में बनाए जाएंगे, लोग वहां जाकर देखेंगे।

और यह भी हो सकता है कि नग्न चित्रों को देखने से मन की जो रिलीज होती हो, अगर वह न हो, तो यह भी हो सकता है कि सड़क पर चलती हुई स्त्रियों को लोग नंगा करें। यह भी बहुत आश्चर्यजनक नहीं है, कठिन नहीं है। अगर चित्त की मांग बहुत बढ़ जाए, तो मैं समझता हूं नंगी फिल्म ही देखना बेहतर है। उससे रिलीज होती है। वह जो चित्त की मांग थी वह पूरी होती है। अगर वह पूरी होना बिल्कुल बंद कर दी जाए सब तरफ से, तो यह भी संभव है कि स्त्री का जीना मुश्किल हो जाए। और हमारे जैसे समाज में जीना वैसे भी मुश्किल है। और उसका कारण है कि मांग है, हम उसकी कहीं से पूर्ति करेंगे।

मेरी दृष्टि में तो, अगर मांग है तो चित्र पैदा होने दो। सारे बंधन अलग करो चित्रों पर से। आदमी को देखने दो। अगर मांग है तो क्या करोगे? अगर मांग है तो क्या करें? उसे देखने दो। उसके मन को हलका होने दो। और अगर हलका नहीं होने देते हैं, तो शायद आदमी व्यवहार ऐसे शुरू करे जो कि हमारी कल्पना के बाहर

हैं। उसका व्यवहार पैथालॉजिकल हो सकता है। अभी उसकी पैथालॉजी, उसकी बीमारी चित्र देखने में भी निकलती है। अभी वह एक गीत और कहानी पढ़ कर भी आइडेंटिटी करके बहुत कुछ हलका करता है अपने मन को। एक नंगी फिल्म देख कर एक आदमी राहत से भरा हुआ घर लौटता है। थोड़ा हलका हो जाता है। उसके टेंशन थोड़े हलके हो जाते हैं। जो उसने देखना चाहा था असलियत में नहीं सही, फिल्म में देख लिया है। थोड़ी देर को तो असलियत मालूम पड़ी है। वह घर ज्यादा शांत और हलका होकर आया है।

अगर वह हम रोक देते हैं और आदमी को बदलते नहीं, जैसा कि साधु-संत समझाते हैं कि वह रोको। और आदमी तो जैसा है वैसा रहेगा। आदमी को बदलने की जरूरत है बुनियाद में। यह हो सकता है, जैसे कि अभी मैंने, आपने शायद अखबारों में पढ़ा भी होगा। सिडनी में एक अमेरिकी नग्न अभिनेत्री को ले जाकर प्रदर्शन किया एक थियेटर में। संयोजकों ने सोचा था कि लाखों रुपये कमा लेंगे। लेकिन पूरे थियेटर में, जहां दो हजार लोग बैठ सकते थे, केवल दो आदमी उस नग्न स्त्री को देखने आए।

थोड़ा सोचना पड़ेगा! अगर यह अहमदाबाद में हो, तो मैं नहीं समझता कि हम सब देखने न जाएं। जाना पड़ेगा। हम यह भी नहीं सोचते कि जो हमको समझाते हैं कि नग्न स्त्री का देखना बुरा है, वे भी न जाएं। वे हो सकता है कपड़े बदल कर जाएं, छिप कर जाएं, कोई उपाय खोजें। मगर यह होगा। हमारी मांग है!

लेकिन पश्चिम में मांग कम होती जा रही है।

मैंने एक चित्र देखा था, किसी मित्र ने मुझे भेजा, लंदन के एक रास्ते पर एक नग्न स्त्री अंडरवियर की किसी कंपनी का प्रदर्शन करती हुई, सिर्फ अंडरवियर पहने हुए सड़क से गुजर रही है। पूरी सड़क भरी हुई है। वह चित्र मुझे लेकर भेजा था कि उस पूरी सड़क पर उस करीब-करीब नग्न स्त्री को कोई भी नहीं देख रहा है। पूरा चित्र भेजा था। वह अपना खड़ी है चौरस्ते के किनारे, लोग चले जा रहे हैं।

कुछ फर्क पड़े हैं। और वह फर्क यह है कि जितना मन के सामने चीजें साफ होंगी उतना मन भी भीतर से निर्मल होगा। मन को बदलने का सवाल है; चित्रों को बदलने का सवाल नहीं है। यह मैंने कहा था, और यह मैं अब भी कहना चाहूंगा।

यह बात सच है कि कार्य-कारण बहुत गुंथी हुई चीज है, इतनी सरल नहीं है। अक्सर एक विसियस सर्किल होता है हर चीज का। हम जो करते हैं वह हमारे मन से संबंधित होता है। फिर जो हम करते हैं वह हमारे मन से संबंधित हो जाता है। फिर जो हम करते हैं उससे मन संबंधित होता है। सब जुड़ा हुआ होता है। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन जो जुड़ता है, वह भी हमारे अचेतन का ही हिस्सा प्रकट होता है। जो हममें नहीं है, उसे प्रकट करने का उपाय भी नहीं है।

कितना ही नंगी गाय को हमारे सामने घुमाया जाए, तो भी हमारे मन में कुछ पैदा नहीं होता। लेकिन अगर पहले हमारे मन के अचेतन में नंगी गाय के प्रति एक भाव भर दिया जाए, सप्रेशन कर दिया जाए--कि नंगी गाय को देखना पाप है। और जो आदमी नंगी गाय को देखता है, बहुत बड़ा पापी है। उससे ज्यादा अनैतिक कोई भी नहीं है। कभी नंगी गाय को मत देखना! और अगर इसे बचपन से बच्चे को सिखाया जाए, वह अपने को दबाए, और जब भी गाय दिखे तो आंख बंद कर ले और बच कर निकल जाए। तो नंगी गाय के भी चित्र बिकने लगेंगे बाजार में। जिनको लोग छिप कर, गीता में रख कर देखेंगे।

वह संभावना है। जिस चीज की मांग पैदा करनी हो, पहले उसकी अचेतन जरूरत पैदा करनी जरूरी है। तो फिल्म जो कर रही है, साधु-संत उसकी जरूरत पैदा कर चुके हैं। फिल्म अब उसका मार्केट, उसका फायदा उठा रही है, उसका लाभ उठा रही है। ये दोनों हमें उलटे दिखाई पड़ते हैं। लेकिन साधु-संत ने जो हमारे चित्त में

सेक्स के प्रति विरोध और दमन पैदा किया है और घबड़ाहट पैदा की है, उस घबड़ाहट का फायदा कोई तो उठाएगा। पहले उपाय नहीं थे। वैसे पहले भी उठाया ही जाता रहा है। आज ज्यादा उपाय हैं, ज्यादा उपाय से उठाया जा रहा है।

फिर भी मैं इस बात को कहना चाहूंगा कि नंगी तस्वीरें रोकने से कुछ भी नहीं रुकेगा। पांच-छह हजार साल से हम रोकने की कोशिश कर रहे हैं, क्या रुक गया है?

लेकिन आदमी के मन को बदलने से नंगी तस्वीरें बनना रुक सकती हैं। क्योंकि यह कोई स्वस्थ नहीं मालूम होता। यह बहुत अस्वस्थ बात मालूम होती है। और दूसरा प्रश्न आप और दोहरा दें या इस संबंध में कुछ हो तो।

सेक्स की मांग जो इंसान के दिल में है, और अश्लीलता की मांग, इन दोनों में थोड़ा वैचारिक...

पहली बात तो यह कि सेक्स की मांग अश्लील नहीं है, लेकिन जो समाज सेक्स की निंदा करेगा उस समाज में सेक्स की अश्लील मांग शुरू हो जाएगी। सेक्स की मांग अश्लील नहीं है, लेकिन सप्रेसिव सोसाइटी सेक्स की मांग को अश्लील रास्तों पर ले जाएगी।

खाना खाना कोई, खाने की मांग कोई पाप नहीं है। लेकिन मैं एक ऐसे घर में पैदा हुआ जहां सोलह वर्ष तक मैंने कभी रात को खाना नहीं खाया था, और सोचता था कि रात खाना खाया तो नरक गया। न कभी घर में किसी को खाते देखा था। और जो आस-पास खाते थे, तो घर के लोगों का भाव भी देखा था कि वे सब नरक जाने वाले हैं। सोलह साल तक घर के बाहर भी ज्यादा नहीं गया था, तो मुझे कभी रात खाने का मौका भी नहीं आया था।

एक बार कुछ मित्रों के साथ पिकनिक पर गया, कालेज में पहुंचा तो। वे तो सब रात को खाने वाले थे। पहाड़ पर दिन भर घूमे, थक गए। उन्होंने दिन में तो खाने की कोई फिक्र न की, रात खाना बनाना शुरू किया। अब मैं दिन भर का भूखा हूं, थका-मांदा हूं। उनके खाने की सुगंध, सामने ही खाना बन रहा है। मेरा पूरा मन तो इनकार कर रहा है कि खाना मत खाना, क्योंकि इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। और भूख कह रही है कि खाना खाना ही पड़ेगा, असंभव है रोकना। फिर उनके खाने की सुगंध घेर रही है। फिर उन सबका मनाना भी आकर्षण दे रहा है--कि खा ही लो, इससे क्या बिगड़ता है! हम सब नरक जाएंगे तो तुम भी चले चलना। इतने लोग सब नरक जाएंगे।

उनकी बात आखिर में मान ली। खाना खा लिया। खाना तो खा लिया, लेकिन रात में तीन बार वॉमिट हुई। जब तक पूरा खाना नहीं निकल गया तब तक मैं रात में सो नहीं सका।

उस दिन मैंने यही सोचा कि यह पापपूर्ण चीज थी, इसलिए वॉमिट हो गई। आज मैं जानता हूं, पाप-पुण्य होने से कोई संबंध न था। मेरा जो विरोध था, मेरी जो निंदा थी, मेरे जो मन का भाव था, मेरा जो सप्रेसिव दिमाग था--कि नहीं खाना है--उसने रिवोल्ट पैदा किया है, उसने वॉमिट भी पैदा कर दी। अब तो बहुत बार खा रहा हूं, अब वॉमिट नहीं होती। इतने लोग खा रहे हैं, उन्हें नहीं होती। उस दिन मैंने यही समझा था कि वॉमिट जो है, वह पाप को बाहर फेंक देने के लिए है।

सेक्स की मांग तो स्वाभाविक है। न हो तो आदमी बीमार है। वह मांग तो स्वाभाविक है। लेकिन उस स्वाभाविक मांग को अगर हम सब तरफ से निंदा करें और रोकने की कोशिश करें, तो मांग अश्लील बन जाएगी,

पाप-पुण्य बन जाएगी। और उस आदमी को भी लगने लगेगा कि कोई अपराध का काम हो रहा है। वह उसे चोरी से भी करने लगेगा और ऐसे उपाय खोजेगा जहां वह मांग भी पूरी हो जाए अश्लील, और कोई बाधा भी न पड़े। अब दो ही उपाय हैं--या तो वह पिक्चर देख कर पूरा कर ले और या सड़कों पर चलती स्त्रियों के वस्त्र छीन ले। एक ही उपाय है--या तो वह कविता पढ़ कर पूरी कर ले या बाथरूम में गालियां लिख कर पूरी कर ले। वह कुछ उपाय खोजेगा और उस उपाय से एक नई मांग पैदा होगी, एक नया बाजार पैदा होगा।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सेक्स की मांग गलत है। मैं यह कह रहा हूं कि सेक्स के संबंध में हमारी जो धारणा है दुश्मनी की, वह गलत है। वह दुश्मनी की धारणा अश्लीलता पैदा करती है। अश्लीलता दमन का सहज परिणाम है। और जितना स्वस्थ समाज होगा उतना कम दमन वाला होगा, उतनी कम अश्लीलता होगी। क्योंकि चीजों के तथ्यों को हमने स्वीकार कर लिया होगा।

एक छोटा सा बच्चा पूछ रहा है, एक छोटे से बच्चे के मन में भी जिज्ञासा है कि लड़की का शरीर कैसा है? एक छोटी लड़की के मन में भी जिज्ञासा है कि लड़के का शरीर कैसा है? और हम सबने उनके शरीर ढांके हुए हैं। और जिज्ञासा बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि लड़के को लड़की कुछ अलग मालूम पड़ती है; लड़की को लड़का कुछ अलग मालूम पड़ता है। घर के लोग अलग-अलग होने का भाव भी पैदा करते हैं, कांशसनेस भी पैदा करते हैं--कि वह लड़का है, वह लड़की है। लड़का गुड्डी खेल रहा हो तो इनकार करते हैं--कि यह क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो! स्वाभाविक है कि वह जानना चाहे कि फर्क क्या है? भेद क्या है? और कभी उसको पूरा नहीं देखा है। तो वह छिप कर देखना चाहता है। वह डाक्टरी का खेल खेल कर और लड़की के घाघरे के भीतर घुस जाना चाहता है। वह कुछ न कुछ उपाय खोजेगा।

अब ये उपाय अश्लील हुए चले जा रहे हैं। ये उपाय खतरनाक हुए चले जा रहे हैं। और इनका ईजाद करने वाला बच्चा नहीं है, इनका ईजाद हम करवा रहे हैं। हम उसको रोक रहे हैं। अगर लड़के और लड़कियां नंगे साथ खेल रहे हों, स्नान कर रहे हों एक उम्र तक, नंगे बड़े हो रहे हों और कोई कांशसनेस न दी जा रही हो कि यह शरीर अलग, यह शरीर अलग, वे उसके अलगपन से परिचित हो गए होंगे, वे बड़े हो गए होंगे।

आज भी आदिवासी समाज में शरीर के प्रति वह जुगुप्सा नहीं है जो हममें है। क्योंकि शरीर खुले हुए हैं, जुगुप्सा का सवाल क्या है! सीक्रेसी नहीं है तो अश्लीलता का सवाल क्या है! एक आदिवासी को हैरानी ही होती है यह बात देख कर कि स्त्रियों के स्तनों का इतना प्रचार विज्ञापनों में हो, फिल्मों में हो! हैरानी ही होती है कि यह मामला क्या है? यह दिमाग खराब हो गया है लोगों का क्या? स्त्री के स्तन हैं सो ठीक बात है, अब इसमें मामला क्या है इतना बढ़ाने का!

और कालिदास से लेकर और सारे कवि स्त्री के स्तनों की चर्चा कर रहे हैं। महाकवि भी वही चर्चा कर रहा है। कालिदास भी वही कह रहे हैं। और सारे लोग वही कह रहे हैं। कालिदास को जंगल में फल लटके दिखाई पड़ते हैं तो भी यही दिखाई पड़ता है कि स्त्री के स्तनों जैसे फल लटके हुए हैं।

यह कुछ न कुछ अस्वस्थ हो गई कहीं कोई बात। कहीं हमने ऐसा धक्का दिया है कि हमने परवर्शन का उपाय पैदा कर दिया। नहीं तो फल में फल दिखाई पड़ना चाहिए। फल से स्त्री के स्तन को देखने का क्या संबंध है? कोई मामला नहीं समझ में आता। कोई एसोसिएशन नहीं दिखता है। लेकिन हमने जब सब तरफ से रोका है, तो माइंड नये-नये मार्ग खोज रहा है, नई तरकीबें खोज रहा है और नये उपाय खोज रहा है।

यह मांग, हमारी जो शुद्धतावादी दृष्टि है उसने पैदा की है। और मजा यह है कि वह शुद्धतावादी दृष्टि कहती है कि हम नियम इसलिए पैदा करते हैं कि आपको स्वस्थ कर सकें। हम व्यवस्था इसलिए देते हैं कि आप

गड़बड़ न हो जाएं। हम अनुशासन इसलिए बनाते हैं कि आदमी भटक न जाए। और उसके अनुशासन, उसकी व्यवस्था, उसके सारे नियम मिल कर, जैसा आदमी है, उसको भटका रहे हैं।

मैं यह नहीं कहता हूं कि कोई व्यवस्था न हो, कोई नियम न हो। मैं यह कहता हूं कि अभी जो व्यवस्था है, अवैज्ञानिक है। व्यवस्था जरूर हो, नियम भी जरूर हों, अनुशासन भी जरूर हो--लेकिन वैज्ञानिक हो। क्योंकि इस व्यवस्था और नियम का यह आउट-कम है, जो हमें दिखाई पड़ रहा है। और मजा यह है कि हम सोचते हैं कि इस व्यवस्था को और मजबूत करो, तब यह रुक जाएगा।

इसको हम जितना मजबूत करेंगे उतना ही यह बढ़ जाएगा। यह उसी से पैदा हो रहा है। यह उसी से संबंधित है।

यह बात ठीक है कि कोई नियम जरूरी है समाज को चलाने के लिए। लेकिन जो नियम हमने आज तक बनाए हैं वे समाज को चलाने में कम, रोकने में ज्यादा सहायक हुए हैं। यह भी सच है कि समाज में एक व्यवस्था, एक थिरता चाहिए। लेकिन थिरता का मतलब जड़ता नहीं है। और व्यवस्था का मतलब मार डालना नहीं है। और आदमी की जिंदगी को सब तरफ से अगर इतने सींकचों में बांध दिया जाए कि हिलना-डुलना मुश्किल हो जाए, तो वह छलांग लगा कर कूद पड़े और सब तोड़ दे, यह भी मुश्किल नहीं है। यह बिल्कुल आसान है, यह उसी से पैदा होगा।

मेरी दृष्टि में, हमारी अश्लीलता हमारी नैतिकता का फल है। सेक्स का नहीं कह रहा हूं। सेक्स का परवर्शन हमारी नैतिकता करती है, जैसी नैतिकता हमने बना रखी है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि कोई नैतिकता न हो। इसका केवल मतलब इतना है कि जो नैतिकता अब तक है वह बहुत गहरे में अनैतिक है। उसके परिणाम अनैतिक हैं। नैतिकता पूरी बदलनी पड़ेगी। कुछ और ढंग से सोचना पड़ेगा।

अगर बच्चे लड़कियों को नग्न देखना चाहते हैं, लड़कियां बच्चों को नग्न देखना चाहती हैं, तो नैतिक समाज वह होगा जो इसकी सरलतम सुविधापूर्ण व्यवस्था कर दे, कि बच्चों को खुद अपने प्राइवेट रास्ते न खोजने पड़ें। तो शायद एक बच्चा ज्यादा स्वस्थ पैदा हो सकेगा। जिज्ञासा उसकी पूरी हो गई, वह आगे बढ़ जाएगा। वह अटकाव नहीं रह जाएगा। वह उलझाव नहीं रह जाएगा। वह किसी तस्वीर में नंगा देखने की आतुरता छोड़ देगा। तस्वीर का नंगा होना अर्थहीन हो जाएगा। उसने नंगे लोगों को देख लिया है। तस्वीर में देखने की अब कोई जरूरत नहीं है।

तस्वीर तभी तक सार्थक है जब तक सब्स्टीट्यूट है। और वह सब्स्टीट्यूट रहेगी। और हम डरते हैं कि कहीं, जब नंगी तस्वीर इतना नुकसान कर रही है तो नंगी लड़की को देखना और नुकसान कर देगा। हमारा तर्क यह है। वह तर्क बिल्कुल गलत है। नंगी तस्वीर इसीलिए नुकसान कर रही है कि नंगी लड़की को देखना असंभव है, नंगे लड़के को देखना असंभव है। हम एक-दूसरे के शरीर से ही परिचित नहीं हो पाते हैं, जो कि बिल्कुल सहज, स्वाभाविक जिज्ञासा है। न कुछ अश्लील है, न कुछ बुरा है।

यह जो मांग हम पैदा कर रहे हैं, यह मांग हमारी पैदा की हुई है। फिर यह मांग का उत्तर भी आएगा ही। और अब चूंकि हर चीज का, आदमी की भीतरी मांग का हरेक का शोषण संभव हो गया है, तो अब हम उसका शोषण भी करेंगे। अब हम ऐसी व्यवस्था से शोषण करेंगे कि शोषण भी जारी रहेगा, मांग मिटेगी भी नहीं।

एक आदमी, एक समाज अगर बच्चों को नग्न रखता हो एक सीमा तक, आठ-दस वर्ष की उम्र तक, जब तक वे नग्न बहुत अच्छी तरह परिचित हो जाएं, और नग्नता पर कोई ऑब्सेशन और टैबू न हो, तो हम पाएंगे कि नग्नता एक अर्थ में मुक्तिदायी है, बजाय खींचने के। नग्नता आकर्षक नहीं है। सुंदर भी बहुत नहीं है। शायद उसे

देख कर विकर्षण ही पैदा हो सकता है, आकर्षण बहुत कम। लेकिन उसे हमने... और जब हम नंगी तस्वीर देखते हैं तो तस्वीर बहुत क्रिएटेड मामला है। उसको हम इस सारी व्यवस्था से बनाते हैं कि वह आकर्षक हो जाती है।

फिल्म पर जो स्त्री हम देख रहे हैं वह स्त्री असली नहीं है। वह स्त्री नब्बे प्रतिशत आदमी की ईजाद है। उसकी सारी बनावट, उसका सारा सौंदर्य, उसके अंग का अनुपात, वह सब ईजाद है। वह सारी व्यवस्था है। वह सब फोटोग्राफी है, वैज्ञानिक टेक्नीक है। और एक ऐसी स्त्री हम देख रहे हैं जिसको पहले ऋषि-मुनि स्वर्ग में अप्सरा को देखा करते थे, अब हम उसको फिल्म में देख रहे हैं। ऋषि-मुनियों को अप्सरा देखनी पड़ती थी, क्योंकि फिल्म उपलब्ध नहीं थी। हमको फिल्म देखने को मिल गई इसलिए अप्सरा की हमने फिक्र छोड़ दी।

लेकिन वह जो अप्सरा जैसी स्त्री खड़ी हो गई है वह नुकसान पहुंचाएगी। क्योंकि उसका एक बिंब हमारे मन में बनने वाला है, बनेगा ही। हमारी मांग भी वही है। और कोई असली स्त्री उस बिंब को पूरा नहीं कर पाएगी। तो कठिनाई हो ही जाने वाली है। कोई असली स्त्री न उतनी सुगंधित मालूम पड़ेगी, न उतनी सुंदर मालूम पड़ेगी, न उतनी अदभुत मालूम पड़ेगी। असली स्त्री असली होगी, ठोस होगी। शरीर होगा, शरीर में पसीना भी होगा, बदबू भी होगी। और सौंदर्य दो दिन में फीका भी पड़ जाएगा। ठीक ही है। वह सौंदर्य न फीका पड़ता, फासले पर है, दूर है।

तो यह हमने जो नैतिक आरोपण से एक व्यवस्था पैदा की है, उस व्यवस्था से अश्लीलता आ गई है। अश्लीलता से मांग आ गई है। और मांग को पूरा करना जरूरी हो गया है। लेकिन पुराना नीतिवादी कहता है, यह मांग से जो सप्लाई पैदा हुई है यह बंद कर दो। उसका कहना है कि सप्लाई बंद कर देने से मांग मिट जाएगी।

यह मुझे अवैज्ञानिक मालूम पड़ता है। मांग कैसे मिट जाएगी? नई मांगें पैदा हो जाएंगी। और खतरनाक मांगें भी हो सकती हैं। आज अगर कलकत्ते में यह हालत है कि सड़क पर चलती हुई स्त्री का कपड़ा उतार लें, पूरी धोती उतार लें और उसे नंगा कर दें। गहने छीनने की हमने बात सुनी थी। पूरी धोती ही उतार लें और नंगी स्त्री को बीच सड़क पर छोड़ दें और उससे कहें कि जाओ, पास में दुकान है, वहां से धोती खरीद लेना।

अगर हम चित्रों में मौका और किताबों में मौका नहीं देते हैं, तो यह हो सकता है। यह बढ़ेगा। इसकी संभावना बढ़ती चली जाएगी। स्त्री को धक्का मारना भी रसपूर्ण हो गया है। हालांकि धक्का मारने में कोई भी रस नहीं हो सकता। एक प्रेमपूर्ण स्पर्श में तो रस हो सकता है, लेकिन सड़क पर चलती एक स्त्री को धक्का मार कर निकल जाने में कौन सा रस हो सकता है, यह समझ के बाहर है। लेकिन जब प्रेमपूर्ण स्पर्श का कोई उपाय न रहा हो तो धक्का मारना भी रसपूर्ण हो सकता है। और एक लड़की पर एसिड फेंकना कौन सा अर्थ रखता होगा या कौन सा सेक्स से संबंधित होगा, इसकी कल्पना करनी मुश्किल है; कि लड़की पर एसिड फेंकना, सेक्स की किसी किताब में कभी नहीं सुझाया गया है कि यह कोई सेक्स की रिलेशनशिप होगी! लेकिन अगर लड़की से दूर-दूर रखोगे तो यह फल होने वाला है--कि जो हमें इतने जोर से आकर्षित कर रहा है, उसके पास भी नहीं जा सकते, उसको मिटा दो। ये विकृतियां पैदा होने वाली हैं, ये परवर्शन पैदा होने वाले हैं।

हमारी नीति को और हमारे परवर्शंस को, हमारी विकृतियों को मैं एक ही चीज के दो हिस्से मानता हूं। और इसलिए परवर्शंस जो मांगें पैदा कर रहे हैं उनको मिटाने का सवाल नहीं है। परवर्शंस जहां से कॉ.ज की तरह आ रहे हैं, ओरिजिनल सोर्स जहां से है, उसे बदलने का सवाल है। मौलिक कारण हमारी नैतिक व्यवस्था है, जहां से विकृतियां पैदा हो रही हैं। लेकिन पुराना नीतिशास्त्री उस नैतिक व्यवस्था पर संदेह भी नहीं उठने देना चाहता।

आप एक और बात कहे, वह बहुत बढ़िया है, आप कहे कि डी.एच.लारेंस की किताबों को पढ़ कर कई स्त्रियों को लगा कि हमने तो कोई सेक्सुअल ब्लिस अनुभव ही नहीं की। और पहले उनको बिल्कुल नहीं लगा था।

इसमें थोड़ा सोचने जैसा है। पहले उनको बिल्कुल न लगने का कारण यह नहीं था कि उनको आनंद मिल गया था। जो उनको मिल रहा था, उसको ही वे आनंद समझे हुए बैठी थीं--जो मिल रहा था। लेकिन वह आनंद लग नहीं रहा था। लेकिन किसी आनंद का कोई पता ही नहीं था, कोई बोध ही नहीं था। लेकिन बहुत गहरे अनकांशस में मांग तो रही होगी कि यह आनंद नहीं है। एक बोर्डम है रोज की, जो हो रहा है। डी.एच.लारेंस को पढ़ कर उनको पहली दफा पता चला होगा, पहली दफा कंपेरिजन पैदा हुआ होगा। और उनके पूरे चित्त ने कहा होगा कि नहीं, वह आनंद नहीं था।

मैं नहीं कहूंगा कि डी.एच.लारेंस को पढ़ कर नुकसान हुआ। मैं कहूंगा, उनकी चेतना का विकास हुआ और जो अचेतन था वह प्रकट हुआ। बिल्कुल प्रकट हुआ। और उन स्त्रियों को जानना चाहिए कि वह आनंद नहीं था, तो शायद स्त्रियां वह व्यवस्था कर सकें जहां आनंद मिल सके। अधिकतम स्त्रियों को सेक्सुअल क्लाइमेक्स कभी मिलता ही नहीं। उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया उस चरम अनुभव का, जो संभोग से उपलब्ध होना चाहिए। मगर उन्हें पता भी नहीं, क्योंकि दूसरा कोई सवाल भी नहीं। अंधे आदमी को अगर आंख वाले न मिलें तो शायद वह यही समझता होगा कि यही होना स्वाभाविक है।

सिमोन वेल ने लिखा है कि उसको तीस साल की उम्र तक सिर में दर्द बना रहा। वह कभी मिटा ही नहीं। पर उसे पता ही नहीं था। क्योंकि वह बचपन से साथ ही चल रहा था। जब पहली दफे मिटा, तब उसे पता चला कि मर गए, यह तीस साल तो मेरी खोपड़ी गर्म थी! लेकिन वह तीस साल गर्म थी तो पता कैसे चलती?

जिन स्त्रियों को डी.एच.लारेंस को पढ़ कर पता चला, वे अगर आनंद में होतीं तो पता नहीं चल सकता था। वे शायद यही कहतीं कि ठीक है, यह आनंद हमने पाया। या वे यह कहतीं कि डी.एच.लारेंस फिजूल की बातें कर रहा है, हम तो इससे बहुत गहरा आनंद पा ही चुके हैं। लेकिन उनको यह लगा कि हमारा सब व्यर्थ था, वह आनंद नहीं था।

मैं मानता हूं, वह ठीक ही लगा। अधिकतम स्त्रियों को सेक्स से कोई आनंद नहीं मिल रहा है। इसलिए अधिकतम स्त्रियां सेक्स के प्रति एक अरुचि जाहिर करती हैं जो पुरुष जाहिर नहीं करते। सच बात यह है कि पुरुष और स्त्री के क्लाइमेक्स में कुछ प्राकृतिक गड़बड़ है। पुरुष का क्लाइमेक्स बहुत जल्दी आ जाता है, स्त्री का क्लाइमेक्स थोड़ी देर से आता है। पुरुष निपट जाता है, तब तक स्त्री क्लाइमेक्स पर पहुंचती ही नहीं। और जो नीतिवादी लोग हैं, उन नीतिवादियों ने यह उपद्रव पैदा किया है। उन नीतिवादियों की वजह से उपद्रव पैदा हुआ। उसके कारण हैं।

असल में स्त्री के लिए, जिसको सेक्स फोर-प्ले कहते हैं, उसकी जरूरत है बहुत देर तक। एकदम से सीधा संभोग किसी भी स्त्री को सुख नहीं दे सकता। उसको आधा घंटा, घंटा भर फोर-प्ले की जरूरत है कि पुरुष उसके शरीर से खेले। सिर्फ संभोग में न चला जाए सीधा। उसके शरीर से इतना खेले कि वह करीब-करीब सेक्सुअलिटी से भर जाए। उसका रोआं-रोआं सेक्स से भर जाए। और तब अगर संभोग हो तो वह करीब-करीब एक साथ क्लाइमेक्स को छू सकते हैं। नहीं तो वे छू नहीं पाते हैं, स्त्री ठंडी ही रह जाती है। लेकिन दूसरे की स्त्री के साथ तो फोर-प्ले हो सकता है, अपनी स्त्री के साथ फोर-प्ले करने की कौन सुविधा पाता है! कैसे सुविधा

पाएगा, कौन जरूरत समझता है? एक एक्ट है, जिसको निपटाया और खत्म किया। वह दो-चार मिनट में निपट जाता है।

तो स्वभावतः स्त्रियां ऊब जाती हैं और उनको लगने लगता है कि यह सब गंदगी है। और इसीलिए तो वे साधु-संन्यासियों के पास पहुंचती हैं, जहां वे समझाते हैं कि यह सब गंदगी है, यह सब नरक है, इसमें कुछ सार नहीं है। और उनको जंचती है यह बात कि सार नहीं है कोई। क्योंकि सार उन्हें कभी दिखाई नहीं पड़ा।

पुरुषों को यह बात इतनी नहीं जंचती कि सार नहीं है। पुरुषों को कुछ सार दिखाई पड़ा। लेकिन अगर स्त्री ठीक चरम स्थिति में न पहुंच सके, जिसको पीक एक्सपीरिएंस कहते हैं अगर वहां तक न पहुंच सके, तो पुरुष का भी आनंद पूरा नहीं होता, अधूरा रह जाता है। और वह आनंद जो उसे मालूम हो रहा है वह उतना ही है जितना कि मैस्टरबेशन में भी मालूम हो सकता है। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। लेकिन स्त्री भी जब पूरे आनंद से भर जाए तब पुरुष के साथ जो आनंद की स्थिति है, जो ब्लिस है, डी.एच.लारेंस उसकी बात कर रहा है।

और मैं मानता हूं कि डी.एच.लारेंस की बात अगर नहीं सुनी गई तो दुनिया को भारी नुकसान होगा। डी.एच.लारेंस की बात जिन स्त्रियों ने न पढ़ी हो उनको भी पढ़ लेनी चाहिए। और जिन पुरुषों ने न पढ़ी हो उनको भी पढ़ लेनी चाहिए। अगर यह ख्याल आ जाए कि कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है, तो गड़बड़ सुधारी भी जा सकती है। लेकिन अगर यह ख्याल रहे कि यही सब ठीक है, यही बोर्डम सब ठीक है जो चल रहा है, तो उसे सुधारा भी नहीं जा सकता।

डी.एच.लारेंस का स्वर्ग बहुत कीमती है, मेरी दृष्टि में। मेरी बात गलत हो सकती है। लेकिन मुझे लगता है... और इसका कारण यह नहीं है कि डी.एच.लारेंस ने उनके भीतर फ्रस्ट्रेशन पैदा कर दिया। फ्रस्ट्रेशन तो मौजूद था, डी.एच.लारेंस ने सिर्फ रिवील कर दिया। पैदा कोई कैसे कर देगा? पैदा करने का कोई सवाल नहीं है।

हां, अब आप दूसरी बात कहते थे--अवैज्ञानिक होने की। वह कहिए!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिना एविडेंसेस के कह रहा हूं, यह आपको लग सकता है। लेकिन मैं जो भी कह रहा हूं, बिना एविडेंसेस के नहीं कह रहा हूं। मेरे एविडेंसेस गलत हो सकते हैं, मेरे नतीजे गलत हो सकते हैं। लेकिन मैं बिना एविडेंसेस के नहीं कह रहा हूं। और मैं कोई हाइपोथीसिस बनाना पसंद नहीं करता, कि उसे पहले बना लूं और फिर उसके समर्थन में सब खोजूं। अगर वैसा करूं तो वह अवैज्ञानिक है। वह अवैज्ञानिक है। और आप तो मेरी विचार-प्रक्रिया से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। और मैंने कितने एविडेंसेस और कितनी सोसाइटीज को अध्ययन करने की कोशिश की है, उससे भी परिचित नहीं हैं। हाइपोथीसिस आपने बना ली है। अवैज्ञानिक... मेरा मतलब यह, मैं कितनी सोसाइटीज की फिक्र से गुजरा हूं या कितनी सोसाइटीज को समझने की कोशिश की है, एक आदमी की सीमाएं होती हैं, उन सीमाओं के भीतर जो भी संभव हो सकता है वह मैं करता हूं।

फिर भी मेरी यह सदा मान्यता होती है कि मैं जो कहता हूं वह बिल्कुल ही गलत हो सकता है। थोड़ा-बहुत नहीं, बिल्कुल ही गलत हो सकता है। और यह भी मैं नहीं मानता हूं कि मैं कह रहा हूं इसलिए सही हो जाएगा और आप कहेंगे तो वह गलत नहीं हो सकता, यह भी नहीं कहता हूं।

और जो यह आप कह रहे हैं कि मैंने एक हाइपोथीसिस बना ली है कि रिप्रेशन से यह सब होता है। हाइपोथीसिस नहीं बना ली है। यह पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास का पूरा अनुभव यह है कि अब तक की सारी मॉरेलिटीज किसी न किसी रूप में कम-ज्यादा रिप्रेसिव रही हैं। और जो समाज जितना ज्यादा रिप्रेसिव रहा है वहां सेक्स परवर्शंस उतने ज्यादा पैदा हुए हैं। जो समाज जितना कम सेक्स रिप्रेसिव रहा है वहां परवर्शंस उतने कम हैं। और जितनी सभ्यता आगे बढ़ती है, उतना रिप्रेशन बढ़ता है, उतने परवर्शंस बढ़ते हैं।

यह जो आप कहते हैं, यह बात जरूर विचारणीय है कि कुछ समाज जो सेक्स की दृष्टि से बड़े उन्मुक्त थे, वे मिट गए, वे नहीं बच सके। जो समाज सेक्स की दृष्टि से रिप्रेसिव थे, वे बच सके। और यह भी बात सच है कि जो समाज सेक्स की दृष्टि से रिप्रेसिव नहीं हैं, वे बहुत शक्तिशाली नहीं हो सके। जो समाज रिप्रेसिव हैं, वे ज्यादा शक्तिशाली हो गए। ये भी विचार करने जैसी बातें हैं।

असल में जो समाज जितना सेक्स मुक्त होगा वह समाज उतना ही कम समाज होगा। एक-एक व्यक्ति अपने आनंद में, अपने रस में जीएगा। समाज जैसी चीज की धारणा मुश्किल से पैदा होगी। समाज की धारणा पैदा होती है नियमों में बंध जाने से, व्यवस्था को स्वीकार कर लेने से, अपने से ऊपर समाज को बिठा लेने से समाज की धारणा विकसित होती है। तो जितना समाज सेक्स फ्री है, उतने समाज में इंडिविजुअल्स होंगे; बहुत ज्यादा होंगे तो परिवार होंगे; समाज जैसी चीज नहीं होगी। बहुत ही होंगे तो कबीले होंगे; समाज जैसी चीज नहीं होगी; राष्ट्र जैसी चीज पैदा नहीं हो पाएगी।

यह कारण था, यह कारण था उनके मिट जाने का कि उनके मुकाबले जो रिप्रेसिव सोसाइटीज थीं वे बड़े पैमाने पर संगठित हो सकीं।

और ध्यान रहे कि जो जितना समाज सेक्स फ्री होगा उतना ही उसके भीतर क्रोध, दमन कम इकट्ठा होगा। उसको युद्ध में नहीं उतारा जा सकता। सेक्स फ्री समाज को युद्ध में उतारना मुश्किल है। और सेक्स रिप्रेसिव समाज को हमेशा युद्ध की जरूरत है। ताकि वह जो सेक्स में नहीं कर पाया है वह युद्ध में कर ले।

तो जो समाज सेक्स रिप्रेसिव है वह लड़ने की तैयारी दिखाएगा। जिस आदमी का सेक्स अतृप्त रह गया है वह झगड़े की कोशिश में रहेगा चौबीस घंटे। वह झगड़े की जो कोशिश है, सब्स्टीट्यूट है उसका। उसके भीतर एक पागलपन घूम रहा है जिसको वह निकालना चाहता है। और सेक्स निकालने का रास्ता नहीं है तो वह लड़ने में उतरेगा।

इसीलिए हम सैनिक को सेक्स से दूर रखने की कोशिश करते हैं। सैनिक अगर सेक्स में संयुक्त हो तो उसके लड़ने की संभावना क्षीण हो जाती है। और अगर सैनिक को छह महीने तक ब्रह्मचर्य की हालत में रखा जाए तो लड़ने में उसकी गति तीव्र हो जाती है। यह तो मिलिटरी का सारा अध्ययन कहता है कि अगर सैनिकों के साथ औरतें भेज दी जाएं तो उनका लड़ने में मन कम लगता है, औरतों में ज्यादा लगता है। स्वाभाविक! और जब औरतें नहीं होती हैं उनके पास तो सिवाय लड़ने के... सेक्स की पूरी एनर्जी को हम वार एनर्जी में बदलने की तरकीब खोज लिए हैं।

तो जो समाज सेक्स फ्री थे वे लड़ने में समर्थ नहीं हो सके दूसरों से। क्योंकि लड़ने का उनके पास, जो लड़ाई का जो पागलपन पैदा होना चाहिए वह पैदा नहीं हो सका। जो लड़ सकते थे वे जीत गए। जो नहीं लड़ सकते थे वे हार गए या बिखर गए या जंगलों में हट गए या दूर हटते चले गए। लेकिन इस कारण वे गलत नहीं हो जाते हैं। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि एक स्वस्थ आदमी और पागल आदमी को अगर लड़ाया

जाए तो पागल के जीत जाने की संभावना ज्यादा है। एक पागल से अगर लड़ा दिया जाए तो पागल के जीत जाने की संभावना ज्यादा है।

मैं यह कह रहा हूं कि सेक्स रिप्रेशन जो है एक सोशल मैडनेस पैदा करता है। और सोशल मैडनेस को निकालने के हमें रास्ते खोजने पड़ते हैं, जो कि युद्ध में मिलते हैं। और इसलिए दस-पंद्रह साल में युद्ध जरूरी हो जाता है। अगर युद्ध न हो तो हमारे भीतर के मनोभावों को, दमन को निकालना बहुत मुश्किल है। और इसीलिए आप देखेंगे कि युद्ध होते ही, किसी तरह का युद्ध हो, हिंदू-मुस्लिम दंगा हो, जो पहला हमला होगा वह औरत पर होगा। यह थोड़ा सोचने जैसा है कि यह मामला क्या है? हिंदू-मुस्लिम लड़ें, लेकिन औरत पर हमला क्यों हो जाता है? हिंदू-मुस्लिम लड़ें तो लड़ें। लेकिन औरत क्यों बीच में आ जाती है? एकदम हिंदू-मुस्लिम का दंगा हुआ, औरत बीच में फंस जाती है फौरन, पहला हमला उस पर है। तो ऐसा मालूम पड़ता है कि इस लड़ाई के पीछे कहीं औरत का भाव, दमन छिपा हुआ था। लड़ाई ने खुला मौका दे दिया। अब औरत को ले लो।

तैमूरलंग, चंगीज या सिकंदर, जितने भी लोग दुनिया में जीते, उस जीत में दो आकर्षण थे सैनिकों के लिए। एक आकर्षण था कि तुम धन लूट सकोगे, दूसरा आकर्षण था कि तुम औरत का भोग कर सकोगे। जो औरत मिल जाए, तुम्हारी। किसी की भी औरत मिल जाए, तुम्हारी। यह खुली बात थी कि चंगीज और तैमूरलंग के जीतने का बुनियादी कारण यह था कि जिन लोगों को वह लाया था उनको सब औरतें मुक्त रूप से उपलब्ध हो सकेंगी। जिस गांव को जीत लिया उसकी सारी औरतों को वे भोग सकेंगे।

औरत पर पहला हमला होता है, जैसे ही झगड़ा हुआ। तो झगड़े का कोई न कोई गहरा संबंध औरत से होना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि अगर आप एक आदमी को सब भांति तृप्त कर दें--अच्छा भोजन मिले, अच्छी पत्नी मिले, अच्छा मकान मिले, जीवन में शांति मिले, संगीत मिले, जिंदगी एक आनंद हो--आप उसे लड़ने के लिए राजी नहीं कर सकते। वह लड़ने के लिए कैसे राजी होगा? लड़ने के लिए फ्रस्ट्रेशन चाहिए। जिंदगी में कुछ न मिले, तो वह आदमी कहता है, जीने से तो मरना ही बेहतर है या मारना बेहतर है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। न जीने में कोई फर्क है, न मरने में कोई फर्क है।

आज अमेरिका पीछे पड़ रहा है लड़ाई के मामले में। साधारण से वियतनाम से नहीं जीत पाता। उसका कारण है। उसका कारण हैः अमेरिका सेक्स फ्री सोसाइटी है; वियतनाम सेक्स सप्रेसिव सोसाइटी है। उसका कारण है कि अमेरिका का युवक लड़ने जा रहा है, वह आराम छोड़ कर लड़ने जा रहा है। उसको पूरे वक्त डर है कि युद्ध मेरा सारा आराम छीन लेगा, सब मजा छीन लेगा, सारी जिंदगी छीन लेगा। वियतनाम का जो सैनिक लड़ रहा है, लड़ने से आराम मिल सकता है। ऐसे तो जिंदगी में कोई आराम नहीं है। वह लड़ रहा है, उसके लड़ने की ताकत में फर्क है।

हिंदुस्तान हारता रहा निरंतर। और जिनसे हारा वे हमसे कम विकसित लोग थे। लेकिन हारने का कारण कुल इतना था कि हम एक आराम में थे, जिस आराम में वे नहीं थे। तैमूर आया, या तुर्क आए, या मुगल आए, वे हमसे बहुत ही ज्यादा परेशान लोग थे, हमसे बहुत ज्यादा फ्रस्ट्रेटेड थे। हम बहुत फ्रस्ट्रेटेड हैं, लेकिन उनका हिस्सा हमसे भी नीचे था। उनसे हमारी टक्कर हुई, हम हार गए। हमको हारना पड़ा। लड़ना हमारे लिए मंहगा था।

अमेरिका को लड़ना मंहगा पड़ता जा रहा है। क्योंकि अमेरिका का लड़का कह रहा है कि हम लड़ना नहीं चाहते, हम जीना चाहते हैं। यहां जीने की सब सुविधाएं हैं, तुम हमें कहां लड़ने भेजते हो? अमेरिका हारेगा।

अमेरिका चीन के सामने हार सकता है। क्योंकि चीन के पास लड़ने के लिए सब कुछ उपाय है। क्योंकि आदमी मर रहा है, लड़ने में एक रस भी हो सकता है। एक संभावना भी है, एक होप भी है, एक आशा भी कि शायद लड़ने से सुख मिल जाए। यहां तो सुख है नहीं बिल्कुल।

जब भी कोई समाज विकसित होता है सब तरह की सुख-सुविधा में, तब वह लड़ने में कमजोर पड़ जाता है। यानी मेरा कहना यह है कि जैसे ही कोई व्यक्ति तृप्त हुआ, जिंदगी एक फुलफिलमेंट हुई, उसको आप लड़ा नहीं सकते। तो सेक्स फ्री सोसाइटीज मर गईं, वे लड़ नहीं सकीं, लड़ नहीं पाईं। सेक्स सप्रेसिव सोसाइटीज जीत गईं, क्योंकि वह लड़ने का फीवर अपने में पैदा कर सकीं। वह सेक्स एनर्जी को लड़ाई में उतार सकीं।

फिर मैं यह नहीं कहता कि मैं जो कहता हूं वह कोई परम सिद्धांत हो जाना चाहिए, कोई एब्सोल्यूट ट्रुथ हो जाना चाहिए। यह मैं कहता ही नहीं। अगर मैं यह कहूं तो मैं अवैज्ञानिक आदमी हूं। अवैज्ञानिक चित्त का लक्षण मैं यह मानता हूं कि वह जो कहता है, मानता है कि यह एब्सोल्यूट ट्रुथ है। यह मैं कहता नहीं। यह मेरा निवेदन है, इससे ज्यादा नहीं है। यह बिल्कुल गलत हो सकता है। और आपसे प्रार्थना यह नहीं है...

और जो आप कहते हैं कि आप कनविंस करिए!

कनविंस करने की बहुत फिक्र मैं नहीं करता। क्योंकि कनविंस करने की फिक्र का मतलब हमेशा यह होता है कि ट्रुथ मुझे मिल गया है, सत्य मुझे मिल गया है, अब काम कनविंस करने का है, कनवर्ट करने का है। ईसाई कनविंस कर रहा है, मुसलमान कनविंस कर रहा है। वे कनविंस कर रहे हैं। क्यों? ट्रुथ तो मिल गया है, सत्य तो पा लिया है। अब एक काम है, दूसरे को कनवर्ट करने का।

मेरा यह कहना नहीं है। मैं आपको कनविंस नहीं कर रहा हूं, सिर्फ निवेदन कर रहा हूं। परसुएड कर सकूं तो भी काफी है, कनविंस करना तो बहुत दूसरी बात है। परसुएशन पर्याप्त है। और परसुएशन में हो सकता है हार जाऊं। अगर गलत हूं तो हार जाना चाहिए, इसमें कोई सवाल नहीं है, आपको परसुएड नहीं होना चाहिए। लेकिन यह आप इतनी जल्दी अगर कह देंगे कि मेरा चिंतन अवैज्ञानिक है, तो थोड़ी जल्दी हो जाएगी। हो सकता है अवैज्ञानिक, इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। क्योंकि अवैज्ञानिक होना ज्यादा आसान है वैज्ञानिक होने की बजाय। वैज्ञानिक होना बहुत मुश्किल है।

लेकिन निवेदन मेरा यह है कि मैं जो भी कह रहा हूं, उसमें कोई आग्रह नहीं है। सत्य का आग्रह भी नहीं रखता, सत्याग्रह भी नहीं है मेरे मन में--कि आपसे कहूं कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है, नहीं मानेंगे तो उपवास कर दूंगा। मैं मानता हूं यह सब कोअर्शन है। किसी भी तरह आपको कनविंस करने का सब कोअर्शन है, सब हिंसा है। वह भी नहीं है। आपसे बात निवेदन कर दी, खतम हो गई बात। इससे ज्यादा कोई फिक्र नहीं करता। आपको ठीक लगी, गलत लगी, यह भी फिक्र नहीं है। आप सोच लेंगे, आप सोचने वाले लोग हैं। ठीक लगेगी ठीक है, नहीं लगेगी नहीं है। लेकिन जो मुझे लगता हो, कि जितना अभी मुझे ज्ञात है उसमें मुझे जो ठीक लगता हो, उसे निवेदन करने का हक तो मांगना ही चाहिए। उसको निवेदन करने के हक से ज्यादा और कोई बात नहीं है।

तो इतनी जल्दी न तय कर लेना कि अवैज्ञानिक चिंतन है।

असल में चिंतन अवैज्ञानिक हो ही नहीं सकता। चिंतन न होना ही अवैज्ञानिक होना होता है। आप सोचेंगे तो अवैज्ञानिक नहीं हो सकते। सोचेंगे तो वैज्ञानिक ही होना पड़ेगा। सोचने की प्रोसेस, दि वेरी प्रोसेस, आपको वैज्ञानिक बनाती है। क्योंकि सोचने की प्रक्रिया में आपको पता चलता है--कितना कम ज्ञात है, कितना ज्यादा अज्ञात है! सोचने की प्रक्रिया में पता चलता है कि जिंदगी कोई सरल चीज नहीं है कि एक सिद्धांत से समझाई

जा सके, बहुत जटिल है। सोचने की प्रक्रिया में पता चलता है कि सीमाएं हैं हमारी और जीवन की बहुत असीम व्यवस्था है।

तो मैं तो मानता हूं कि "अवैज्ञानिक चिंतन" ऐसा शब्द भी गलत है, कंट्राडिक्ट्री है। चिंतन अवैज्ञानिक नहीं हो सकता। चिंतन न हो तो ही अविज्ञान होता है। और चिंतन हो तो विज्ञान पीछे आना शुरू हो जाता है। और चिंतन हम कैसे पैदा करें?

तो हमारी जो मान्य धारणाएं हैं उन पर शक पैदा करें तो चिंतन पैदा होगा। मान्य धारणाओं पर संदेह खड़ा करें तो चिंतन पैदा होगा। मान्य धारणाओं को हिलाएं, फिर से पूछें, फिर से सवाल उठाएं, तो पैदा होगा।

यह मैं मानता हूं कि सेक्स फ्री सोसाइटीज हार गईं। लेकिन जीत कोई सफलता नहीं है। जीत कोई सफलता नहीं है। और दुनिया अच्छी बनेगी तो सेक्स फ्री होगी, हम लड़ना बंद करेंगे। बजाय इसके कि हम सेक्स रिप्रेशन डालें और लड़ाई जारी रखें, लड़ना बंद किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि लड़ने के लिए, लड़ाने के लिए भी सेक्स सप्रेशन बिल्कुल जरूरी है। बिल्कुल जरूरी है। लड़ाया नहीं जा सकता आदमी को उसके बिना।

और अगर सारी दुनिया में आदमी की जरूरतें, अगर सारी जरूरतें पूरी हो जाएं, भोजन की, कपड़े की, सेक्स की--और उनमें उसे आनंद आ जाए, तो वह अपने में एक आइलैंड बन जाएगा, वह आपकी फिक्र छोड़ देगा। वह अपने में मुक्त-भाव अनुभव करेगा। वह अपने में घिर जाएगा। वह इसकी फिक्र छोड़ देगा कि दूसरा आदमी क्या कर रहा है। नैतिक है कि अनैतिक है। दूसरे के घर में क्या हो रहा है, उसके की-होल में से झांक कर देखना चाहिए कि नहीं झांकना चाहिए। दूसरा आदमी अच्छा है या बुरा, यह फिक्र छोड़ देगा। यह हमारी सारी फिक्र, हमारे भीतर जो फ्रस्ट्रेशन और विषाद है, उसकी वजह से पैदा हुई है।

फिर भी, इतना ही मैं कहता हूं कि ये सारे प्रश्न हमें उठा कर सोच लेने चाहिए। और अगर मुझसे प्रश्न भी उठ जाएं--उत्तर तो मैं देता ही नहीं हूं--प्रश्न भी उठ जाएं तो काफी है। काम चल पड़ेगा, लोग सोचने लगेंगे। उत्तर भी नहीं दे रहा हूं आपको। आप एक प्रश्न उठा रहे हैं, मैं और दस प्रश्न उसके साथ खड़े कर रहा हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

सिगमंड फ्रायड ने कहा है कि जो दमन है, रिप्रेशन है, वह सभ्य होने के लिए चुकाई गई कीमत है। आदमी को सभ्य होना हो तो हमें किसी न किसी मात्रा में दमन को स्वीकार करना पड़ेगा। यह बात सच है, लेकिन अतीत के लिए, भविष्य के लिए नहीं। सिगमंड फ्रायड जो कह रहा है वह सच है। अतीत के मनुष्य को कुछ भी पता नहीं था कि सिवाय रिप्रेशन के आदमी को सभ्य करने का और कोई उपाय हो सकता है। सिगमंड फ्रायड की दृष्टि अतीत के पूरे अनुभव पर खड़ी है, भविष्य की परिकल्पना नहीं है उसमें। आदमी को पता ही नहीं था कि बिना दमन किए हम किसी आदमी को सभ्य कैसे बनाएं!

लेकिन बात अब बहुत बदल गई है। अब हमें बहुत कुछ पता है। बल्कि सच यह है कि अब हालत उलटी है, कि अगर हम आदमी के रिप्रेशन को किन्हीं-किन्हीं मात्राओं में छुटकारा नहीं दिलाते तो आदमी को बचाना ही मुश्किल है, सभ्य बनाना तो बहुत दूर की बात है। आदमी सभ्य तो बन चुका, लेकिन जिस प्रक्रिया से बना है उस प्रक्रिया ने उससे उसके सारे जीवन का रस छीन लिया। सभ्य तो वह हो गया। भविष्य में हमारे पास ज्यादा

महत्वपूर्ण रास्ते हो सकते हैं। और धीरे-धीरे उनका मार्ग खुल रहा है कि हम आदमी को सभ्य बना सकते हैं बिना रिप्रेशन के।

और यह बात भी ठीक है कि पूर्णतया रिप्रेशन से मुक्त समाज शायद कभी न बन सके। असल में पूर्णता की बात ही नहीं करनी चाहिए किसी भी दिशा में। किसी भी दिशा में एब्सोल्यूट की बात नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह होगा ही नहीं। हमेशा बात रिलेटिव की है। ज्यादा मुक्त समाज बन सकता है। पूर्ण मुक्त समाज कभी नहीं बनेगा। पूर्ण मुक्त व्यक्ति बन भी सकता है। लेकिन वह भी शायद पूर्णता पूर्ण नहीं हो सकती। लेकिन समाज तो कभी पूर्ण नहीं बन सकता। लेकिन अधिकतम पूर्णता के निकट हम उसे ले जा सकते हैं। या अपूर्णता के निकट ले जा सकते हैं।

अतीत के मनुष्य के पास जैसे बैलगाड़ी साधन थी कुल जमा कहीं जाने का, और वह सोच भी नहीं सकता था कि अंतरिक्ष यान हो सकते हैं। मनुष्य के रूपांतरण में, ट्रांसफार्मेशन में भी रिप्रेशन बिल्कुल बैलगाड़ी जैसा मेथड है, एकदम क्रूडेस्ट मेथड है, जो आदमी को हम सुसभ्य बनाने के लिए उपयोग में लाएं। अगर दो सौ साल पुराने शिक्षक से पूछो कि शिक्षा का रास्ता क्या है, तो वह डंडा बताएगा। उसकी कल्पना के बाहर है कि डंडे के बिना भी कोई शिक्षित हो सकता है! लेकिन अब हम जानते हैं कि डंडे के द्वारा शिक्षित करना खुद भी एक तरह की अनकल्चर्ड और अनएजुकेटेड स्थिति है। डंडे के द्वारा शिक्षित करना भी अशिक्षित आदमी का ही लक्षण है।

लेकिन क्या कर सकते थे, कोई उपाय नहीं था। जो अतीत में हो गया है वह होने वाला था, वह हो गया है। लेकिन भविष्य में अब आदमी को सभ्य बनाने के दूसरे रास्ते खोजे जा सकते हैं। और रिप्रेशन से तो आदमी अब सभ्य नहीं रह सकेगा, आत्मघात कर लेगा। दुनिया में फैलते हुए युद्ध और आदमी के पास आती हुई ताकतें विनाश की, अगर सेक्स रिप्रेशन को आप जारी रखते हैं, तो एटम और हाइड्रोजन बम का गिरना जरूरी है। वह उसी रिप्रेशन का इकट्ठा रूप है।

होता यह है कि हम पानी को गर्म करें तो निन्यानबे डिग्री तक वह भाप नहीं बनता, तब तक वह सिर्फ गर्म होता है, सौ डिग्री पर भाप बनना शुरू होता है। निन्यानबे डिग्री तक सिर्फ गर्म होता है, सौ डिग्री पर भाप बनना शुरू होता है।

पांच हजार साल में सिर्फ सभ्य बन रहा था आदमी। सौवीं डिग्री पर पता चला है कि एवोपरेट हो जाएगा। अब सभ्यता की वह प्रोसेस काम नहीं करेगी, हमें कुछ और प्रोसेस खोजनी पड़ेगी। अगर वही प्रोसेस सभ्यता की एकमात्र है, अल्टरनेटिव और कोई नहीं है, तो आदमी की मृत्यु सुनिश्चित है। आदमी बच नहीं सकता है अब आगे। या तो पूरी मनुष्यता पागल हो जाएगी, न्यूरोटिक हो जाएगी। जैसी कि करीब-करीब हालत है। और या फिर हम कोई बड़े युद्ध में उतर जाएंगे। और राजनीतिज्ञ हमारे बीच सबसे ज्यादा न्यूरोटिक है और उसके हाथ में सारी ताकत इकट्ठी हो गई है। खतरा है पूरा का पूरा।

हमें सभ्य बनाने की प्रक्रिया में भी बदलाहट करनी पड़ेगी। और अब हमारे पास इतना नया ज्ञान है जो फ्रायड के पास भी नहीं था। फ्रायड एक अर्थ में उतना ही पुराना है जितने मनु महाराज। समय का फासला नहीं है अब। इधर पैंतीस साल में फ्रायड के मरने के बाद जो संभावनाएं खुली हैं, उनका फ्रायड को सपने में पता नहीं था। फ्रायड तो मनोविज्ञान की बिल्कुल क ख ग की बात कर रहा था। तो फ्रायड की बात अब शास्त्र-वचन नहीं है। अब हमें सोचना पड़ेगा। यह सच है कि अतीत में मनुष्य रिप्रेशन के द्वारा ही सभ्य किया गया। लेकिन जो सभ्यता आई वह ऐसी आई कि वह न्यूरोटिक है। अब हमें आगे सोचना पड़ेगा। आदमी सभ्य भी किया जा सके

और न्यूरोटिक भी न हो। और इसके लिए उपाय खोजने पड़ेंगे। और मैं मानता हूं कि उपाय मिलने शुरू हो गए हैं।

निश्चित ही हर उपाय के साथ खतरा जुड़ा होता है। रिप्रेशन का एक मेथड था, उसके साथ खतरा था न्यूरोसिस के आ जाने का, वह आ गई। अब हमारे पास नये उपाय हैं जिनके द्वारा हम... जैसा आपने कहा, सिर्फ सवाल सेक्स का ही नहीं है, एग्रेशन का है। लेकिन आप हैरान होंगे कि एग्रेसिव मेंटेलिटी के पीछे पचास मौकों पर तो सेक्स होता है। यह कहना मुश्किल है कि छुरा भोंकते वक्त आदमी को वही रस नहीं आता जो सेक्सुअल पेनिट्रेशन में आता है। यह सोचने जैसा है कि दूसरे आदमी के शरीर में छुरा भोंकना सेक्सुअल पेनिट्रेशन से बहुत भिन्न नहीं है। और छुरा और तलवार किसी न किसी अर्थों में जननेंद्रिय के प्रतीक हैं जो हम दूसरे की बॉडी में घुसा देते हैं। और हो सकता है कि वह जो रिप्रेसिव माइंड है, वह ये तरकीबें खोज रहा है दूसरे के शरीर में प्रवेश के। आप दूसरे रास्ते नहीं दे रहे हैं। वह दूसरे रास्ते खोज रहा है। और न्यूरोटिक हुआ चला जा रहा है।

अब मेरा मानना है, सेक्सुअल पेनिट्रेशन का तो एक अर्थ भी है, लेकिन छुरा घुसाने का बिल्कुल अर्थ नहीं है। एग्रेशन जो है, वह फ्रस्ट्रेशन का फल है बहुत मौकों पर। कुछ मौके होंगे जहां बॉडिली या फिजियोलॉजिकल कारण होंगे। अब तक फिजियोलॉजिकल कारणों को दूर करने का हमारे पास कोई उपाय नहीं था। लेकिन साइकेडेलिक ड्रग्स ने वह उपाय हमारे सामने रख दिया है--कि हम आदमी के फिजियोलॉजिकल और केमिकल कंस्ट्रक्शन में फर्क ला सकते हैं।

खतरे उसके भी हैं। खतरे तो हर मेथड के साथ हैं। क्योंकि मेथड तो न्यूट्रल है। क्या हम उपयोग कर लेंगे। अब हमारे पास वे ड्रग्स हैं कि एक आदमी को देकर हम उसका सारा एग्रेशन छीन ले सकते हैं। तो बजाय रिप्रेशन के एक ड्रग देकर उसका एग्रेशन विसर्जित कर देना अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। और पावलफ या उस तरह के जिन लोगों की खोजें इस संबंध में गहरी हैं, उनका तो मानना ही यह है कि यह मामला ही केमिकल है। एक खास हार्मोन आपको एग्रेसिव बना रहा है, उसको अलग कर दो। इसके लिए न नीति की जरूरत है, न संन्यासी को समझाने की जरूरत है, न मंदिर की जरूरत है। एक हार्मोन आपको क्रोधित कर रहा है, उसको अलग करो। और एक हार्मोन आपको क्षमा, उदारता और सहानुभूति देता है, उसको डालो।

इसकी बहुत संभावनाएं हैं। इसकी बहुत संभावनाएं हैं कि बुद्ध और महावीर गलती में रहे हों कि साधना के कारण शांत हो गए हैं। इसकी बहुत संभावनाएं हैं कि फिजियोलॉजिकल केमिस्ट्री उनकी भिन्न रही हो। और आज नहीं कल इस पर सोचना पड़ेगा। इस पर सोचना पड़ेगा कि बुद्ध के शरीर की केमिस्ट्री में ही तो कहीं यह बात नहीं है कि करुणा निकलती है। और पावलफ तो यही कहेगा कि बात यही है कि बुद्ध की बॉडी में... और यह भी हो सकता है कि हमारे योग की सारी प्रक्रियाएं कुछ न करती हों, सिर्फ केमिकल फर्क लाती हों। लंबा उपवास केमिकल फर्क लाता है। गहरी आक्सीजन, जोर से श्वास लेना, प्राणायाम, केमिकल फर्क लाता है। यह हो सकता है, एक आदमी जो प्राणायाम करता हो, कम एग्रेसिव हो जाए। लेकिन इसका गहरे में मतलब इतना ही हो सकता है कि आक्सीजन की ज्यादा मात्रा एग्रेशन कम करती है। तो फिजूल प्राणायाम करो रोज, इसकी क्या जरूरत है? आक्सीजन तो डाली जा सकती है सरलता से।

वैज्ञानिक चिंतन हमें वहां खड़ा कर रहा है जहां हम आदमी को एग्रेशन से मुक्त कर देंगे बिना रिप्रेशन के। और आदमी में जिन गुणों की हमने हजारों साल से आकांक्षा की थी, क्षमा की, दया की, मैत्री की, करुणा की, वह तो साइकेडेलिक ड्रग्स से हो सकता है अब।

लेकिन खतरा उसका है। खतरा यह है कि जब तक दुनिया राजनीतिज्ञों के हाथ में है, खतरा पूरा है। कौन कह सकता है कि एक हुकूमत अपने सारे मुल्क को ड्रग्स देकर रिबेलियन के खिलाफ ठंडा कर दे। कठिनाई नहीं है। यह हो सकता है कि आपके रिजर्वायर पर ड्रग्स डाले जाएं, केमिकल्स डाले जाएं। रोज पानी आप पीते रहें और आपके भीतर जो रिबेलियन, रेवोल्यूशन हो सकती है वह ठंडी हो जाए। और मैं मानता हूं कि माओ या रूस में इसका प्रयोग होगा। इस पर काफी खोजबीन चलती है कि हम आदमी के भीतर से विरोध कैसे खत्म कर दें?

तो खतरे तो हर चीज के हैं। लेकिन खतरों से बच कर उनके फायदे उठाने की चेष्टा की जानी चाहिए। और अगर दुनिया में एक हुकूमत बन जाए तो ही साइकेडेलिक ड्रग्स का हम ठीक उपयोग कर सकेंगे, नहीं तो बहुत मुश्किल मामला है। और इसलिए अब दुनिया में किसी तरह की डिक्टेटरशिप के लिए कोई मौका नहीं होना चाहिए, किसी भी कीमत पर। चाहे वह समाजवाद लाती हो, चाहे साम्यवाद लाती हो, चाहे कितने ही सपने दिखाती हो, लेकिन किसी कीमत पर अब डिक्टेटरशिप बरदाश्त करना खतरनाक है। क्योंकि अब डिक्टेटर्स के हाथ में ऐसी ताकते हैं, जो दुनिया में कभी आदमी के हाथ में नहीं थीं। हमें पता ही नहीं चलेगा कि हमारे साथ क्या किया जा रहा है! और हमारे भीतर से सारा विरोध, सारा क्रोध, सारा रेसिस्टेंस, सब खींच लिया जा सकता है। खतरे हैं।

लेकिन इतना मैं आपसे निवेदन करूंगा कि इन खतरों को जान कर, इनके फायदे उठाए जा सकते हैं। ऐसे बच्चे पैदा किए जा सकते हैं जो पैदाइश से नॉन-एग्रेसिव हों। अहिंसा-वहिंसा सिखाने की बहुत जरूरत नहीं है। नॉन-एग्रेसिव आदमी पैदा किया जा सकता है। असल में हमने आदमी को वैज्ञानिक ढंग से पैदा करने के संबंध में अभी सोचा ही नहीं है। बिल्कुल नहीं सोचा है। कैसा ही आदमी पैदा हो जाता है, फिर उसको सिखाने की कोशिश करते हैं।

और मैं मानता हूं कि सिखाना करीब-करीब असफल सिद्ध हुआ है, कुछ सफल नहीं हुआ। बुद्ध चालीस साल सिखाते रहे, एक बुद्ध पैदा नहीं कर पाए। असफलता पक्की है। चालीस साल बुद्ध मेहनत करें और एक बुद्ध पैदा न हो पाए, असफलता पक्की मालूम पड़ती है। और ऐसा लगता है कि कुछ इंडिविजुअल डिफरेंस हैं भीतर, कि जो बुद्ध को संभव है वह दूसरे को संभव नहीं हो पाए।

इसका सबका वैज्ञानिक चिंतन हो, तो मैं समझता हूं अब सभ्य बनाने के लिए हमें पुराने अत्यंत जड़ प्रयोग करने की जरूरत नहीं है। ज्यादा वैज्ञानिक, समुचित मार्ग हमारे पास है। एक बहुत ही अदभुत आदमी पहली दफा पासिबिलिटी पैदा हुई है पैदा होने की। अब तक जो पैदा होते थे, वह सब एक्सिडेंट है--चाहे बुद्ध हों, चाहे महावीर, चाहे क्राइस्ट, चाहे कोई भी--वह एक्सिडेंट है बिल्कुल। हमारी इस गड़बड़ भीड़ में कभी कोई एक आदमी ठीक पैदा हो जाता है, बिल्कुल एक्सिडेंट है। उसको गिनती में नहीं लेना चाहिए। लेकिन अब हम अगर थोड़ा वैज्ञानिक व्यवस्थापन दें... और पुरानी नीति के साथ वह व्यवस्थापन नहीं चलेगा।

जैसे कि आज सुबह ही मैं बात कर रहा था, हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए। नहीं हो सकता। अगर हम थोड़ा भी वैज्ञानिक विचार करें तो। बच्चे पैदा करने का हक तो कुछ ही लोगों को हो सकता है, सबको नहीं हो सकता। पति-पत्नी बनने का हक सबको हो सकता है। लेकिन बच्चे पैदा करने का हक नहीं हो सकता। बाप और मां बनने का हक कुछ लोगों को ही दिया जा सकता है। और अगर हम इस सब पर विचार करें तो एक पचास साल में हम बिल्कुल ही नई रेस खड़ी कर सकते हैं जिसका पुराने आदमी से कोई वास्ता नहीं।

लेकिन अब इसके उपाय बनते जा रहे हैं, क्योंकि आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन शुरू हो गया है। जानवर के साथ तो हम करने लगे हैं। क्योंकि जानवर कुछ इनकार नहीं करता। न उसकी कोई नीति है, न कोई शास्त्र है। आदमी के साथ कठिनाई है। उसकी नीति, उसके शास्त्र बड़ी बाधा बनते हैं। यह मैं सोच ही नहीं सकता कि मेरी पत्नी से और दूसरे का वीर्य उधार मांग कर बच्चा पैदा किया जाए। यह बड़ा घबड़ाने वाला मालूम पड़ता है।

घबड़ाने वाला कुछ भी नहीं है। जब मैं अपने बच्चे को अच्छा कपड़ा देना चाहता हूं, अच्छी शिक्षा देना चाहता हूं, अच्छा मकान देना चाहता हूं, तो अच्छा बीज क्यों न देना चाहूं! साइंटिफिक होने का तो मतलब यही होगा कि उसे अच्छे से अच्छा बीज उपलब्ध हो सके। इस दुनिया में जो भी श्रेष्ठतम वीर्यकण मिल सके, वह मेरे बच्चे का आधार बने। लेकिन वह हमारी हिम्मत नहीं जुट पाती। नहीं तो आइंस्टीन या इतने बढ़िया लोगों के वीर्यकण खोने नहीं चाहिए। बिल्कुल अवैज्ञानिक है। वेस्टेज है, सियर वेस्टेज है--कि आइंस्टीन जैसा आदमी मर जाए और उसके सारे वीर्यकण खत्म हो जाएं! उसके सारे वीर्यकण सारी दुनिया में अच्छी मांओं को उपलब्ध हो जाने चाहिए।

यह उदाहरण के लिए कह रहा हूं।

हमारी नीति बहुत दिक्कत दे रही है। क्योंकि नीति बिल्कुल पुरानी है, प्रिमिटिव है, जिसमें कुछ समझ नहीं है। और हमारे पास समझ इतनी बढ़ गई है जिसका कोई हिसाब नहीं है। उन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं है। जब तक नीति का ढांचा न टूटे, हम अच्छा आदमी पैदा कर ही नहीं सकते। युद्ध जारी रहेगा, पागलपन जारी रहेगा, बीमारी जारी रहेगी, अपराध जारी रहेंगे, सब जारी रहेगा। क्योंकि आदमी के साथ साइंटिफिक होने के लिए हम तैयार नहीं हैं। हम सब चीजों में साइंटिफिक हो जाते हैं। बैलगाड़ी की जगह हम हवाई जहाज ले आते हैं। कोई दिक्कत नहीं मालूम होती। पुराने झोपड़े की जगह अच्छा मकान बना लेते हैं। सड़क पर पाखाना करने की बजाय हम सेप्टिक लैट्रिन बना लेते हैं। सारा विज्ञान का उपाय हम अपने से बाहर करते हैं। सिर्फ आदमी को हम छोड़ देते हैं।

यह बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि सारी दुनिया वैज्ञानिक हो गई है, सिर्फ आदमी अवैज्ञानिक है। इसके बीच तालमेल नहीं बैठ रहा है, मुश्किल खड़ी हो रही है। और इसीलिए तो गांधी जैसे लोग यह सुझाते हैं कि दुनिया को भी अवैज्ञानिक करो, नहीं तो मुश्किल हो जाएगी। उसका कारण कुल इतना है कि तालमेल टूट रहा है।

दो ही उपाय हैंः या तो आदमी के साथ भी विज्ञान का उपयोग करो, और या फिर बाहर भी विज्ञान का उपयोग छोड़ दो, चर्खा-तकली पर वापस लौट जाओ, नीचे लौटो। दो ही उपाय दिखते हैं हार्मनी के भविष्य में, कि या तो बाहर हम विज्ञान को छोड़ दें या भीतर भी विज्ञान का प्रयोग करें।

और बाहर छोड़ा नहीं जा सकता। बेवकूफी होगी छोड़ना। इतने हजारों वर्षों के श्रम और प्रतिभा का फल है जो हमें उपलब्ध हुआ है। अब चर्खा-तकली पर लौट जाना ऐसी निपट नासमझी होगी जिसका हिसाब नहीं है! हां, आदमी के साथ हमको वैज्ञानिक होने की चेष्टा करनी चाहिए, उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक। पूरे विज्ञान की हमें फिक्र करनी चाहिए। और अगर यह हो सकती है, तो पुरानी नीति का ढांचा हमें तोड़ना ही पड़ेगा। एकदम तोड़ना पड़ेगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वे मित्र पूछ रहे हैं कि विचार और दर्शन में क्या फर्क है? और विज्ञान विचार है या दर्शन? दूसरी बात यह पूछ रहे हैं कि सेक्स को मैं सेंट्रल एक्सपीरिएंस कह रहा हूं और उसके हल से बहुत कुछ हल होगा। यह मुझे बाद में सूझा है कि पहले से ही ख्याल में है?

पहली तो बात यह, विचार कभी नया नहीं होता। जब हम किसी चीज के संबंध में सोचते हैं, तो जो हम जानते हैं हम उसकी ही पुनरावृत्ति करते हैं। अगर मैं आपसे कहूं, कुर्सी के संबंध में सोचिए! तो आप क्या करेंगे? क्या प्रोसेस होगी? करेंगे क्या? कुर्सी के संबंध में जो जानते हैं, सुना है, पढ़ा है, देखा है, अनुभव किया है, वह सारी स्मृति और सारा अनुभव दोहरना शुरू होगा कुर्सी के आस-पास। विचार कभी मौलिक नहीं है। विचार वही है जो हमारी स्मृति का हिस्सा बन गया है। उसी को हम दोहरा लेते हैं। विचार ठीक से समझें तो मेमोरी है। उसका पुनरावर्तन है।

दर्शन मैं कह रहा हूं कि एक ऐसी जगह पहुंच जाता है विचार, जहां आप आगे सोच ही नहीं सकते। सोचने की सीमा आ जाती है। समझ लीजिए, कुर्सी के बाबत जो भी आप जानते हैं, सब सोच लिया, और फिर भी लगा कि कुछ हल नहीं हुआ, बात वहीं की वहीं खड़ी है। कुर्सी उतनी ही अज्ञात और अननोन रह गई है जितनी पहले थी। और आप चुप खड़े रह गए। विचार बंद हो गया। अब भी आप होंगे, कुर्सी होगी। अब जो संभावना है उसको मैं दर्शन या इनट्यूशन की कह रहा हूं।

और विज्ञान भी गहरे में इनट्यूशन है, विचार नहीं है। वैज्ञानिक विचार कर रहा है, कर रहा है, कर रहा है... एक क्षण आता है कि सब विचार असमर्थ हो जाता है, नहीं आगे सोच पाता, विचार ठहर जाता है, एक डेड स्टॉप आ गया। सिर्फ कांशस रह जाता है। प्रॉब्लम रह जाता है, कांशसनेस रह जाती है। थिंकिंग गई। इसी क्षण में कुछ घटना घटती है, जिसे मैं दर्शन कह रहा हूं। टेक्नीशियन विचार कर रहा है। वैज्ञानिक दर्शन कर रहा है।

लेकिन दर्शन को भी जब दूसरे को प्रकट करना हो तो विचार में ही करना पड़ेगा। प्रकट करने का माध्यम विचार है। संगृहीत करने का माध्यम विचार है। लेकिन एक इनट्यूटिव वि.जन, चाहे दर्शन हो धर्म का, और चाहे विज्ञान का, गहरे में मैं मानता हूं कि विज्ञान, धर्म, सारे वि.जन्स आदमी को तब उपलब्ध होते हैं, जब वह सब विचार छोड़ देता है। लेकिन विचार तभी छूटता है जब कि आप पूरे विचार से गुजर जाएं। और उस डेड एंड पर पहुंच जाएं, जहां विचार फ्यूटाइल हो जाता है। जहां लगता है, अब विचार आगे नहीं जाता है। छोड़ दो। अब विचार से कुछ होता नहीं। विचार कुछ भी नहीं कर सकेगा। और पूरा मन शांत हो गया, विचार खो गया। सिर्फ आपकी चेतना प्रॉब्लम को साक्षात्कार कर रही है। उसको मैं दर्शन कह रहा हूं। विज्ञान भी, उसकी मौलिक खोजें, सब दर्शन हैं।

एप्लाइड एस्पेक्ट तो ...

नहीं, एप्लाइड एस्पेक्ट नहीं। एप्लाइड एस्पेक्ट तो विचार है। क्योंकि जब एक दफे वि.जन मिल गया, एक दृष्टि मिल गई, एक ख्याल आ गया, तो अब उस ख्याल को एप्लाई करना तो आपके पुराने सारे विचार का उपयोग करके होगा। वह तो सब विचार है। एप्लाइड साइंस तो थिंकिंग है, लेकिन प्योर साइंस इनट्यूशन है। वह इनट्यूटिव है।

और इसीलिए, जैसे मैडम क्यूरी या आइंस्टीन, इन सारे लोगों का अनुभव यही है कि हम यह नहीं कह सकते कि हमने ही सोच कर यह निकाल लिया। हम तो सोच-सोच कर लड़खड़ाते रहे, लड़खड़ाते रहे... एकदम अचानक रिवील हो गई है कुछ बात। वह हमारे विचार से आई है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि हमारे विचार में कोई उससे कंटीन्युटी नहीं मालूम पड़ती। वह कहीं और से आ गई है। यही अनुभव दुनिया के उन लोगों का भी है जो ईश्वर-साक्षात्कार की बात कहते हैं, या समाधि की, या सत्य की। उनका भी अनुभव यह है कि हम विचार करके नहीं पहुंच गए हैं। कहीं विचार खो गया है, और कोई चीज उतर आई है। कवि का, पेंटर का, सबका वही अनुभव है। जहां भी क्रिएटिव कोई एक्सपीरिएंस है, वहां इंट्यूशन है, दर्शन है।

और दूसरी जो बात आप पूछते हैं, वह सदा से मेरे मन में रही है। लेकिन निरंतर उस पर सोचता चला जाता हूं तो बहुत सी नई बातें जुड़ती चली जाती हैं। आप एक सवाल पूछते हैं। हो सकता है वह सवाल मैंने कभी न पूछा हो और पहली दफा आपके साथ सोचना शुरू करता हूं। सेक्स का ख्याल मेरे सामने है, क्योंकि मैं मानता हूं कि सबसे ज्यादा नुकसान मनुष्य के सेक्स सेंटर को पहुंचाया गया है, सबसे ज्यादा। सब तरह से क्रिपिल्ड किया गया है उस सेंटर को। और वह सेंटर बायोलॉजिकली केंद्रीय है, क्योंकि सारे जीवन का उदगम उससे है, जीवन की धारा उससे है। तो सेक्स के सेंटर को मनुष्य के सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया गया है। और उसी एनर्जी को दूसरे चैनल्स में डाइवर्ट करके काम लिया गया है अब तक।

तो इसलिए मनुष्य के सुधार में वह एक केंद्रीय स्थान रखता है। उसको अगर हम स्वस्थ नहीं कर सकते हैं, यानी सेक्स सेंटर जो है वह न्यूरोटिक हो गया है, उसे अगर हम हेल्दी नहीं कर लेते हैं वापस, तो आदमी को स्वास्थ्य देना बहुत मुश्किल मामला है। इसलिए मैं उसको सेंट्रल कह रहा हूं।

और अगर हम चारों तरफ गौर से देखें तो सारी प्रकृति में, सारे जीवन में वह सेंट्रल है। और कुछ भी ऊंचाइयां भी अगर उपलब्ध होंगी तो उसी एनर्जी के सब्लीमेशन, उसी एनर्जी के ऊपर जाने से होंगी। वही एनर्जी किसी भी चीज में कनवर्ट होने वाली है, ट्रांसफार्म होने वाली है। चाहे डाइवर्ट करो उसे, चाहे उसको डिस्टार्ट करो, चाहे सब्लीमेट करो, एनर्जी वही है।

मेरी दृष्टि में, अगर सेक्स विकृत हो, तो पागल आदमी को पैदा करता है। और अगर सेक्स परिपूर्ण स्वस्थ हो, तो सेक्स ट्रांसेंडेंस हो जाता है। तो हम जिसको संत कहते हैं, महात्मा कहते हैं, ऋषि कहते हैं, वह पैदा हो जाता है। नीचे गिर जाए कोई आदमी सेक्स से तो अपराधी की दुनिया में पहुंच जाता है; ऊपर उठ जाए तो परमात्मा की दुनिया में पहुंच जाता है। लेकिन बीच की जो सेंट्रल, जहां सारा काम करना जरूरी है, वह सेक्स है। और मजा यह है कि उसकी हम बात नहीं करते, उसका चिंतन नहीं करते। न विचार करते हैं, न चर्चा के योग्य मानते हैं।

अभी पीछे जो फ्रांस में युवकों का ढेर बगावत और आंदोलन चला, तो उसमें सोरगुन विश्वविद्यालय में शिक्षामंत्री फ्रांस का बोलने गया यूनिवर्सिटी में लड़कों की समस्याओं पर। उसने एक घंटे बोला। तो बेनेडिक्ट, जो उस बगावत का नेता था, वह खड़ा हुआ और उसने कहा कि महाशय, हमने एक घंटे आपकी बकवास सुनी। लेकिन हमारा जो प्रश्न है, हमारा जो सवाल है, वह आपने छुआ भी नहीं। और आपकी छह सौ पृष्ठों की किताब भी हम पढ़ गए। उसको पढ़ना एक तपश्चर्या थी, क्योंकि वह बिल्कुल बोरिंग थी। लेकिन उसमें भी, जो हमारा असली सवाल है, वह आपने स्पर्श भी नहीं किया। सेक्स के बाबत आपको क्या कहना है?

यानी मजा यह है कि हम उसको चूक कर ही बात करते हैं, उसको छोड़ ही जाते हैं। सब सवालों की बात करेंगे, उसको भर छोड़ जाएंगे। और मजा यह है कि हमारे बहुत सवाल उससे अंतर्संबंधित हैं, अधिकतम सवाल उससे जुड़े हैं।

यू नो व्हाट वा.ज हिज रिप्लाई? ही सेड दैट देअर इ.ज ए स्विमिंग पूल नियर बाइ, यू गो एंड टेक ए स्विम!

हां-हां, उसने यह कहा, उसने यह कहा। लेकिन यह उत्तर नहीं है। अच्छा तो यह होता कि उसको पकड़ कर स्विमिंग पूल में डुबाया होता उन्होंने। यह उत्तर अच्छा नहीं है, जवाब नहीं है, बचाव है। जवाब क्या हुआ? यह कोई जवाब हुआ? लड़कों का सवाल है! और मैं मानता हूं यूथ के सारे प्रॉब्लम के केंद्र पर सेक्स है। उनकी इनडिसिप्लिन हो, उनका मूवमेंट हो, पत्थर तोड़ना हो, बस जलाना हो, उस सबके केंद्र पर सेक्स है। लेकिन उसको हम छूते नहीं! और नहीं छुएंगे तो कुछ हल होता नहीं।

सारे आदमी के केंद्र पर वह सवाल खड़ा हुआ है। वह मुझे ख्याल तो पहले से है, लेकिन जैसे-जैसे बात उस पर चलती है, क्योंकि बात चलाना भी तो मुश्किल मामला है न, बात चलाना ही मुश्किल होता है। बात रोकने की सब चेष्टा की जाती है। तो कितने दूर तक आप राजी होते हैं, उतने दूर तक बात चलानी पड़ती है, फिर रुक जाना पड़ता है। फिर मौका बनता है तो बात चलानी पड़ती है, लेकिन वह मुझे ख्याल सदा से है।